RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/2015-17 प्रकाशन तिथि [illegible] जुलाई 2015

बाल विज्ञान पत्रिका अगस्त 2015

चकमक

मूल्य ₹ 50

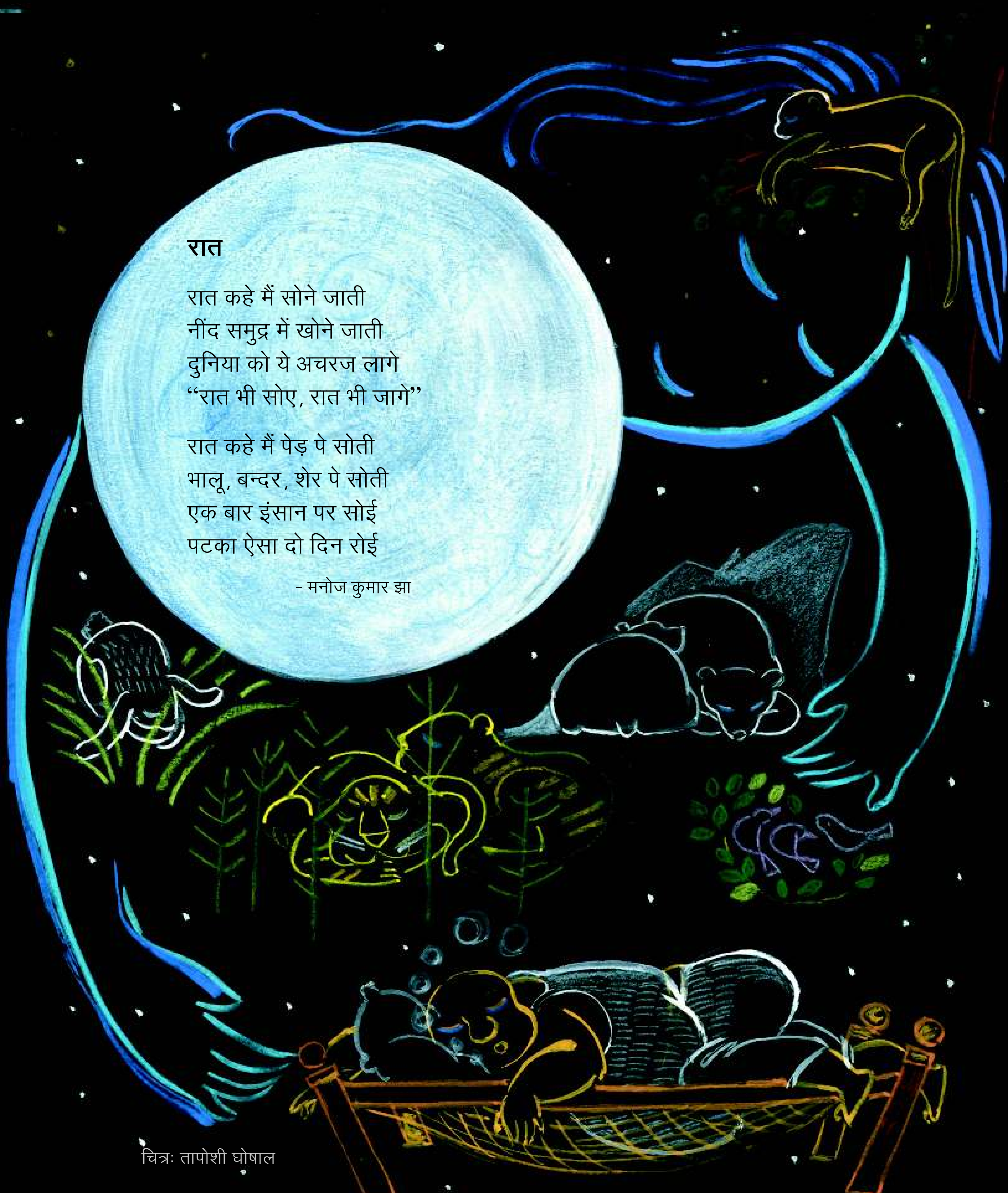

रात

रात कहे मैं सोने जाती
नींद समुद्र में खोने जाती
दुनिया को ये अचरज लागे
“रात भी सोए, रात भी जागे”

रात कहे मैं पेड़ पे सोती
भालू, बन्दर, शेर पे सोती
एक बार इंसान पर सोई
पटका ऐसा दो दिन रोई

- मनोज कुमार झा

चित्रः तापोशी घोषाल

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 347 अगस्त 2015

इस अंक में

2 रात / मनोज कुमार झा
4 बादल गरजते हैं
6 मैं ढूँढ रहा हूँ...
9 आज़ादी के मायने - स्कूली बच्चे
10 रंगों की लड़ाई / मेहा
12 मिट्टी-पत्थर की जासूसी / रश्मी पालीवाल
17 मेरा पन्ना
18 दोस्त / शशिकिरण
22 माथापच्ची
23 पहेली
24 गर बत्तख हवा में उड़ सकती
25 बोली रंगोली
30 अब तक छब्बीस / विवेक सोले
32 मिले-जुले पन्ने
34 एक-एक बूँद से क्या मस्ती आती थी! / नूरेनिशाँ
38 मगरमच्छों का बसेरा / जसबीर भुल्लर
41 मेरा पन्ना
42 परछाइयाँ / जी. ए. कुलकर्णी
47 चित्रपहेली / कविता तिवारी

चित्र
मेरा पन्ना से

आज़ादी की नुक्ती

15 अगस्त के कारण हमने एक दिन पहले से कपड़े धो रखे थे। 15 अगस्त के दिन हमने सबेरे 5 बजे उठकर मुँह-हाथ धोए और नहाया। फिर हमने चाय पी और उसके बाद हम ड्रेस पहनकर, जूते-मौजे पहनकर बढ़िया तैयार होकर स्कूल गए।

वहाँ हम थोड़े घूमे-फिरे और फूटे खाए। इतने में सर आ गए और कहने लगे चलो लाइन में लगो। हम लाइन में लग गए। एक मोड़ा हमरी लाइन में लगो। हमने बाके दो-चार करारे हाथ जमाए। इत्ते में बो मासाब के पास पहुँच गओ। मासाब से बा ने कही कि मासाब मोहे एक मोड़ा ने मार दओ। तब मासाब मेरे पीछे दौड़े तई हमने भग दओ और सिंधी कालोनी की गलियों में घूमत रहे और बुद्धा के खेत में से हीट के गल्ले बाज़ार पहुँचे। भा पे भाषण भये। भाषण सुन-सुन के हमरो दिमाग पच गओ। भाषण खतम भये। हम सब स्कूल आए। हम लाइन में लगे नुक्ती बँट रही थी।

फिर बोई मोड़ा मिल गओ। बा फिर हमसे उलझन लगो। हमने बाहे इत्तो मारो, इत्ते मारो कि बाहे बेहोश कर दओ। हमें एक पुड़िया नुक्ती मिली। उत्तीसी नुक्ती के पीछे हम दिन भर परेशान रहे और नुक्ती खात-खात घर आ गए।

(यह रचना चकमक के फरवरी 1990 के अंक में प्रकाशित हुई थी।)

- राजनारायण दुबे

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स
के वित्तीय सहयोग से विकसित

आवरण चित्र
दिलीप चिंचालकर

हाशिए के चित्र
अरविन्द गुप्ता की
पुस्तक
आहा एक्टिविटीज से

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

एक प्रति :	30.00	-	व्यक्तिगत
	50.00	-	संस्थागत
वार्षिक :	300.00	-	व्यक्तिगत
	500.00	-	संस्थागत
तीन साल :	800.00	-	व्यक्तिगत
	1350.00	-	संस्थागत
आजीवन :	4000.00	-	व्यक्तिगत
	6000.00	-	संस्थागत

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने)
मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
भोपाल के बाहर के चैक में
80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

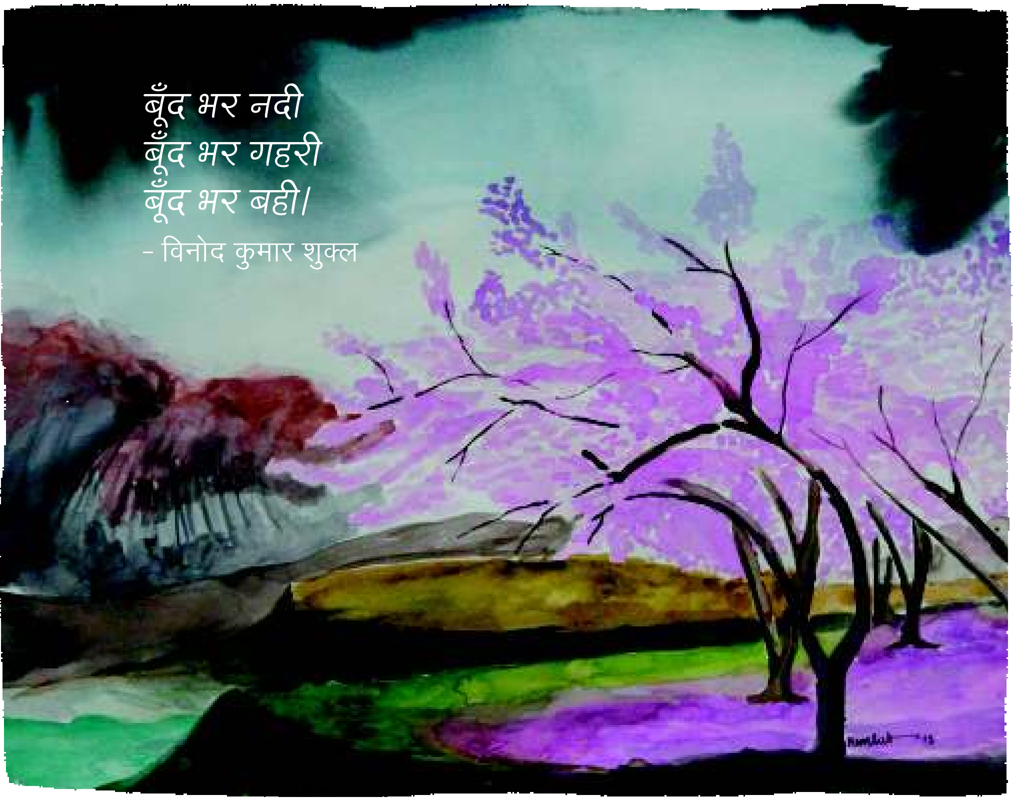

बूँद भर नदी
बूँद भर गहरी
बूँद भर बही।
- विनोद कुमार शुक्ल

हर्शित वर्मा, दसवीं

यह संसार कागज की
पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना।
- *कबीर*

जब वर्षा शुरू होती है
तब कहीं कुछ नहीं होता
सिवा वर्षा के
आदमी और पेड़
जहाँ पर खड़े थे वहीं खड़े रहते हैं।
- *केदारनाथ सिंह*

समुद्र पर हो रही है बारिश
- *नरेश सक्सेना*

बादल गरजते हैं
उसके लिए भी जो सुन नहीं सकता
- *अरुण कमल*

जूते
बारिश में भीगकर
एक अजब ढंग से
खूबसूरत लग रहे थे।
- *केदारनाथ सिंह*

आज सितारे भी हैं सोए, बादल की चादर में खोए - *बच्चन*

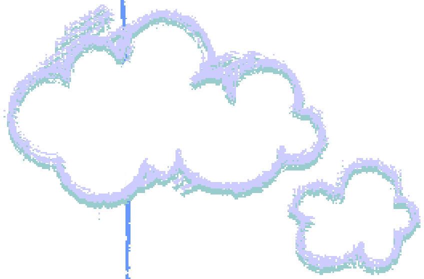

जितनी बूँदें
उतने जौ के दाने होंगे
इस आशा में चुपचाप
गाँव यह भीग रहा है।
- *रघुवीर सहाय*

देवदार की जड़ों से
अभी और बहुत नीचे तक जाना था पानी को।
- कुंवर नारायण

प्रथम बंसल, आठवीं

छत्ते की छाया की मेरी बदली
अपनी इस बदली के छाते को लेकर जाता हूँ।

- विनोद कुमार शुक्ल

होठों ने चखा पानी
बूँदों में रखा पानी।

- गुलजार

पानी उतरा टीन पर, फिर कूदा ज़मीन पर।

- प्रमोद

पंछी सब...भीगे होंगे, या उड़ गए होंगे कहीं

- बोधिसत्व

छाए मेघ आषाढ़ के, खिल खिल गए बबूल
चाँदी जैसे शूल हैं, सोने जैसे फूल।

- विनोद पदरज

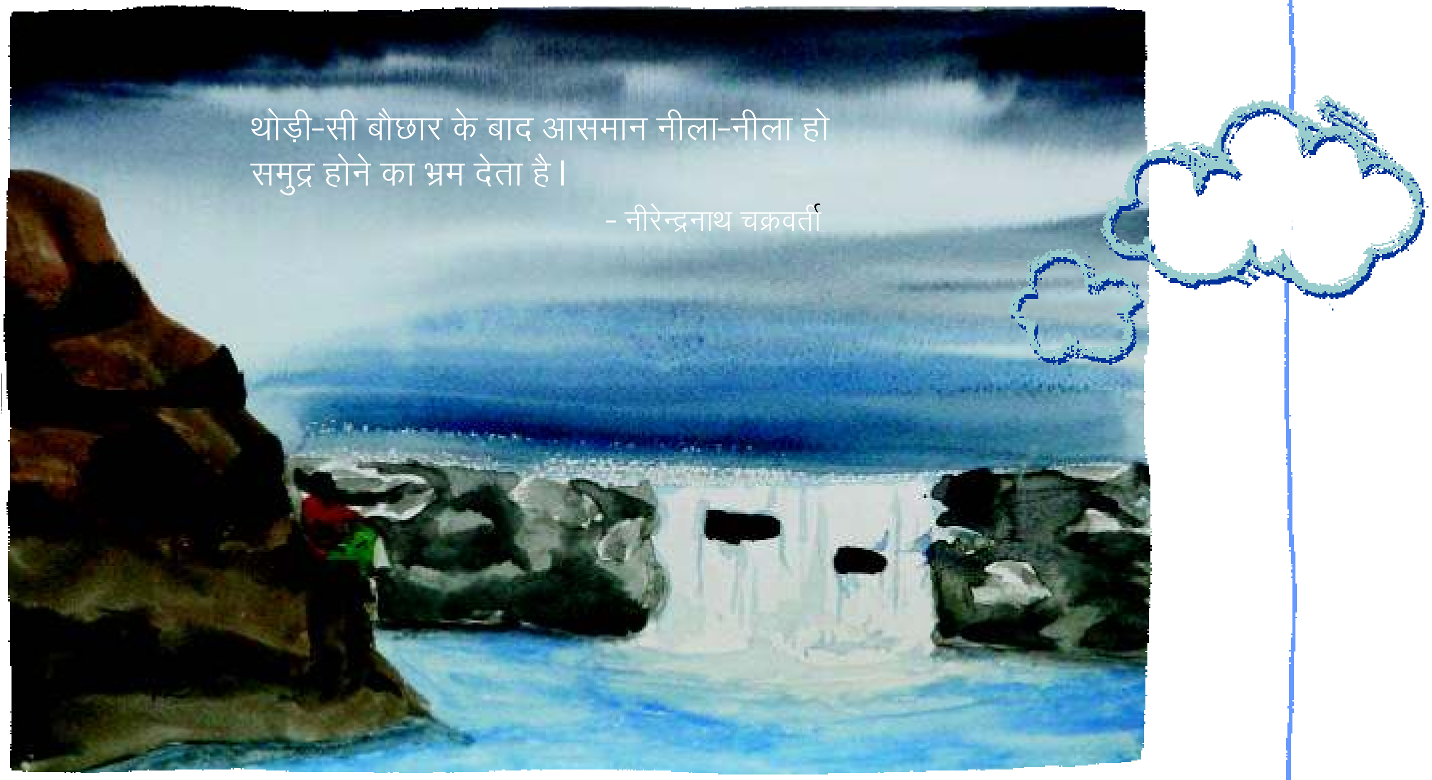

थोड़ी-सी बौछार के बाद आसमान नीला-नीला हो
समुद्र होने का भ्रम देता है।

- नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती

राना संजोग, आठवीं

अमल-धवल गिरि के शिखरों पर, बादल को घिरते देखा है। *- नागार्जुन*

बारिश में भी पहुँच जाते हैं स्कूल
यह देखने कि वह बन्द है कि खुला हुआ।

- मंगलेश डबराल

ये अब्र पुराने हैं
बरसेंगे यहीं आकर
मेरा घर जाने हैं।

- अजन्तादेव

चेहरे पे चलती हैं बूँदें।

- गुलजार

हरा समुद्र थम गया है और
मैदान कहीं नीचे हैं डूबे हुए।

- विष्णु खरे

(तीनों चित्रकार दून स्कूल देहरादून में पढ़ते हैं।)

Sagashiteimasu
सागाशितेइमासु - मैं ढूँढ रहा हूँ..

आथा विनाड
फोटो - तादाशि ओकाकुरा

6 अगस्त 1945 *की सुबह अमरीका ने जापान पर एक घातक परमाणु बम गिराया। इससे भयानक तबाही मची। हिरोशिमा के एक संग्रहालय में परमाणु बम से तबाह हुई 21 हज़ार चीज़ें रखी हैं। आथा विनाड ने उनमें से 14 चीज़ों को चुना, उन्हें सुना और सागाशितेइमासु यानी इस किताब को रचा। विनाड अमरीकी कवि हैं और लम्बे समय से जापान में रहकर जापानी भाषा में कविताएँ लिखते हैं। तस्वीरें प्रसिद्ध फोटोग्राफर तादाशि ओकाकुरा ने खींचीं। ....परमाणु बम के गिरने से पहले ये चीज़ें किसी न किसी के पास थीं। एक तरह से ये उन सब लोगों की एक याद की तरह हैं। काश, हमें उन्हें याद करने का कोई बेहतर बहाना मिला होता!*

गुड मॉर्निंग

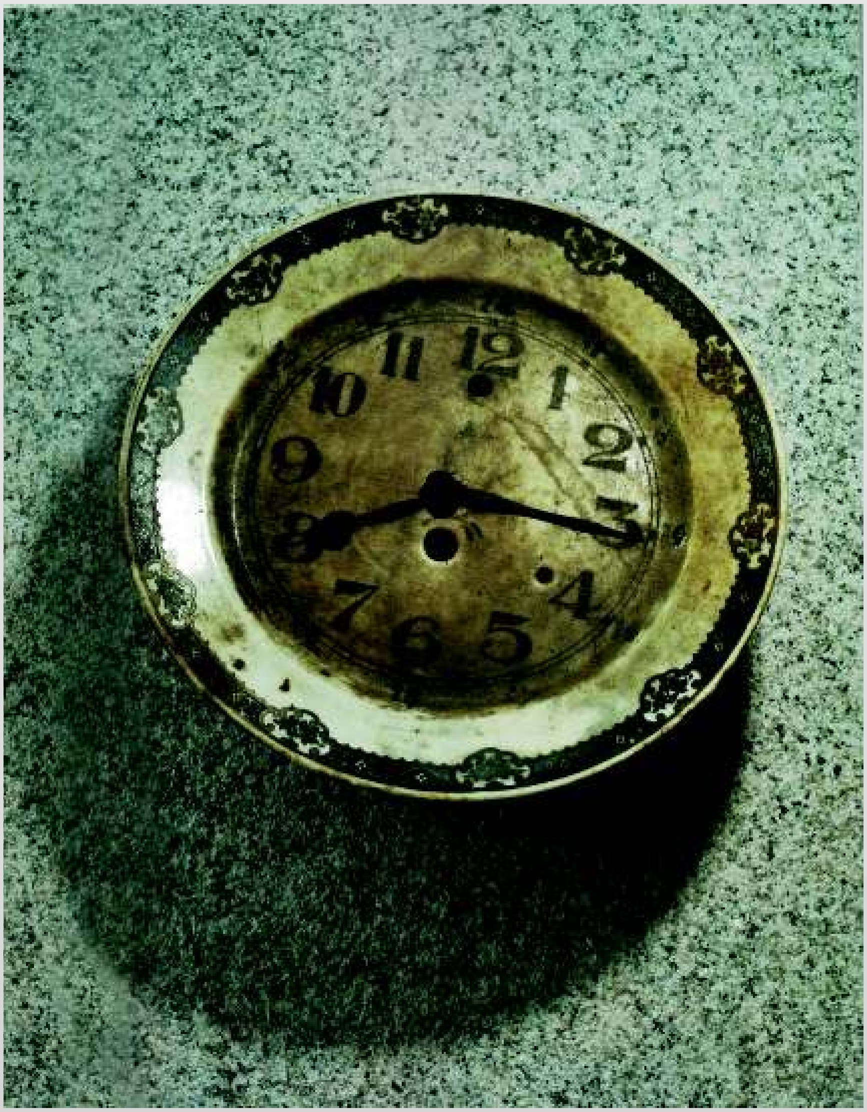

तुम्हारे लिए "अभी" कितने बजे हैं?
मेरा तो "अभी" अब हमेशा के लिए सुबह के
आठ बजकर पन्द्रह मिनट होकर रह गया है

पहले मेरी
बड़ी और छोटी सुई
गुड मॉर्निंग के बाद
गुड आफ्टरनून और गुड ईवनिंग के बाद
गुड नाइट बजाती थी।
मैं हिरोशिमा में एक नाई की बेहद व्यस्त
दुकान की दीवार पर टँगी
सब को समय बताया करती थी
कि छह अगस्त की सुबह आठ बजकर पन्द्रह
मिनट पर
एक भयानक चकाचौंध हुई
और तेज़ लपटों ने मेरे चेहरे के 1 पर
2 पर, 3 पर, 8 और
9 पर ज़ोर का वार किया
और मेरा "अभी" वहीं रुक गया
हमेशा के लिए

मैं अब गुड मॉर्निंग के बाद
के गुड आफ्टरनून को ढूँढ रही हूँ...

सीक्रेट

मुझे सीक्रेट (छिपाकर रखी चीज़ों) से प्यार है। मैं सदाको के सीक्रेट के इन्तज़ार में हूँ जिन्हें वो मुझसे साझा करनेवाली थी। वो जब हिरोशिमा आई थी तो उसकी एक सहेली से उसने मुझे पाया था। उसे वो सारी बातें लिखनी थीं जिन्हें उसने किसी को नहीं बताया था। पर तभी 6 अगस्त आ गई।

उस सुबह जो तेज़ चमक हुई थी वो अमरीकी आर्मी का सीक्रेट थी। अमरीका के लोगों से भी वो छिपा कर रखी थी। किसी को उसकी खबर न थी।

उस सीक्रेट ने सदाको की जान ले ली।

मैं सबको उस सीक्रेट के बारे में कैसे बताऊँ? मैं इसका जवाब ढूँढ रही हूँ...

खाने को मेरी नमस्ते!

कहते हुए रिको को मेरा ढक्कन खोलना था
और सेम की फली के साथ चावल खाना था

बारह साल की रिको को मजबूरन
हर रोज़ हिरोशिमा की इमारतों को ढहाने का काम करना पड़ता था
छह अगस्त की सुबह भी वो रोज़ की तरह काम पर गई
कि एक तेज़ रोशनी ने उसे चौंका दिया
मैंने बहुत कोशिश की
कि उसके खाने को बचा पाऊँ
पर तेज़ आँच के साथ रोडियोधर्मिता
मुझे चीरते हुए भीतर आ गई।
खाना अब खाने लायक नहीं बचा था।

मैं अब भी उसे ढूँढ रही हूँ।
उसकी नमस्ते सुनना चाहती हूँ जो वो कह नहीं पाई...

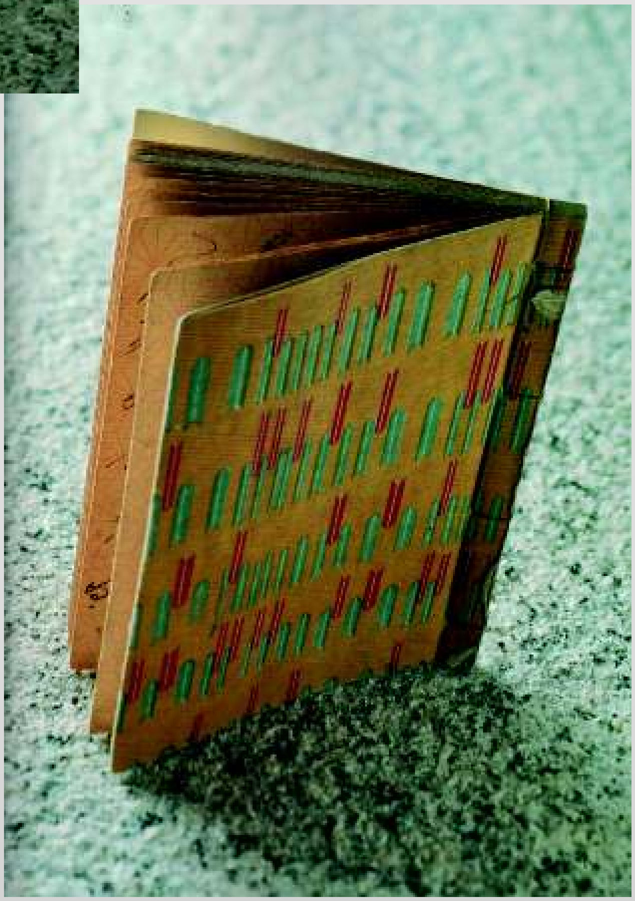

चलो खेलें...चलो खेलें...

तोशियुकी अपने दोस्तों के साथ हमें लुढ़काकर खेलता था। पर 1945 में उसे हर रोज़ फैक्ट्री में काम करने जाना पड़ता था। खेलने के लिए उसके पास कोई वक्त नहीं था।

6 अगस्त को वो काम पे जाने के लिए रेलगाड़ी का इन्तज़ार कर रहा था कि आग की तेज़ लपट ने उसे झुलसा दिया। वो तुरन्त लेट गया पर तब तक वो पूरा जल चुका था।

हम घर पर ही थे फिर भी पिघल गए। अब कँचों की तरह हम गोल कहाँ रह पाए?

क्यों वो काम पे जाता था?

चलो खेलें, चलो खेलें...

अब हम क्या खेलेंगे?

हम जवाब ढूँढ रहे हैं...

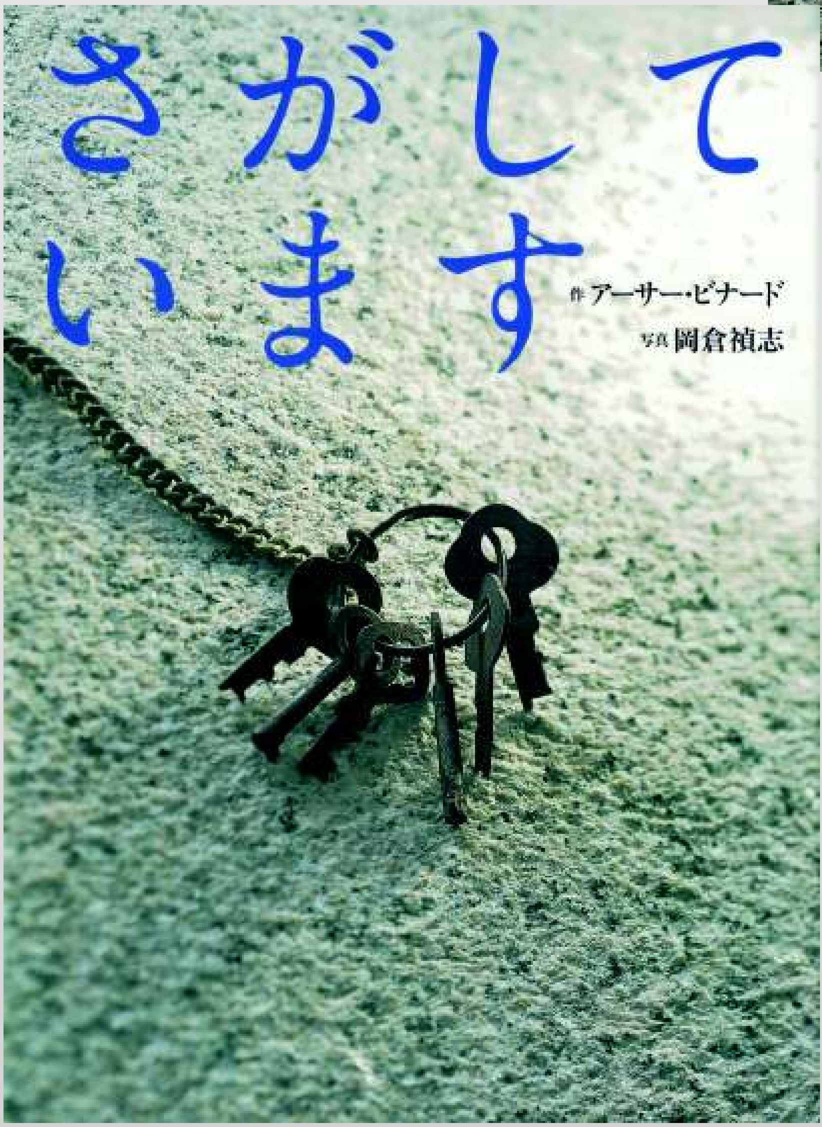

रिहाई

खट से खुला, खट से बन्द हुआ

खट खट खट खट

ये हमारा रोज़ का काम है

जापानी सैनिक हमें उठाते और ताले में घुसा देते

एक भारी भरकम दरवाज़ा खुलता

और अमरीकी सैनिकों को एक सँकरे कमरे में धकेलकर

खट से...दरवाज़े पर फिर ताला जड़ दिया जाता

6 अगस्त की सुबह एक अमरीकी हवाई जहाज़ ने हिरोशिमा पर एक युरेनियम बम गिराया।

तेज़ आग में अमरीकी और जापानी सभी सैनिक मारे गए।

लोगों को क्यों कैद किया जाता है? क्या युरेनियम कैद नहीं हो सकता?

अब हम नए काम की तलाश में हैं...

(इस किताब तक पहुँचने में हमारी मदद करने के लिए तोमोको किकुची का बेहद आभार, शुक्रिया।)

आज़ादी

सफदर हाशमी

कल ही शाम को शर्माजी ने
टोपी नई खरीदी
घर पर टीवी देख रहे हैं
पापा, मम्मी, दीदी।

लाल किले के आसपास है
आज़ादी का मेला
सबसे ऊपर नाच रहा है
झण्डा एक अकेला।

कदम मिलाते, बैण्ड बजाते
फौजी आते-जाते
पूरे लान में बच्चे-बूढ़े
चने मुरमुरे खाते।

सब ही कहते आज के दिन
आज़ाद हुआ था देश
आज के दिन ही अँग्रेज़ों का
राज हुआ था शेष।

अपनी तो कुछ समझ न आए
आज़ादी और देश
हम तो छत से देख रहे हैं
पतंग-पतंग के पेंच।

हम से कोई पूछेः “भैया
आज़ादी क्या होती है?”
हम कह देंगे, “उस दिन सबकी
पूरी छुट्टी होती है।”

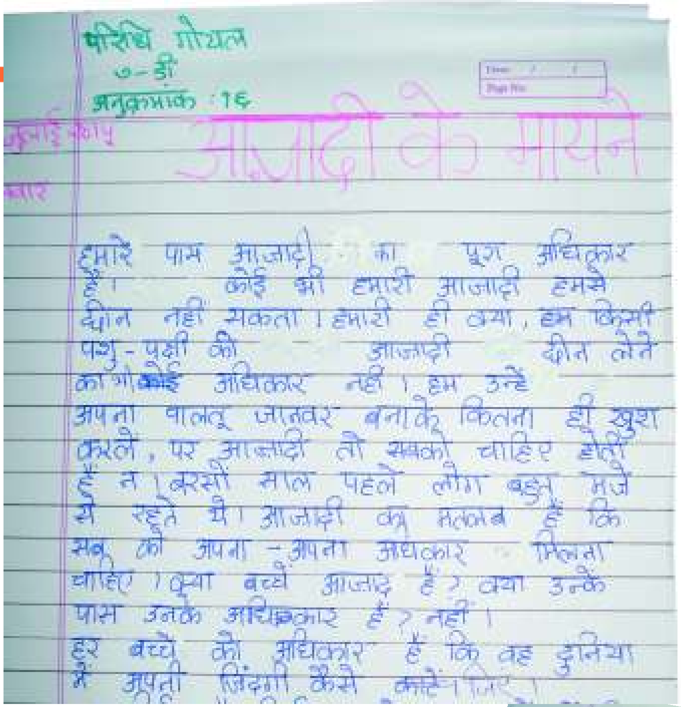

परिधि गोयल
७-डी
अनुक्रमांक :16

आजादी के मायने

हमारे पास आजादी का पूरा अधिकार है। कोई भी हमारी आजादी हमसे छीन नहीं सकता। हमारी ही क्या, हम किसी पशु-पक्षी की आजादी छीन लेने का भी कोई अधिकार नहीं। हम उन्हे अपना पालतू जानवर बनाके कितना ही खुश करले, पर आजादी तो सबको चाहिए होती है न। बरसों साल पहले लोग बहुत मजे से रहते थे। आजादी का मतलब है कि सब को अपना-अपना अधिकार मिलना चाहिए। क्या बच्चे आजाद है? क्या उनके पास उनके अधिकार है? नहीं। हर बच्चे को अधिकार है कि वह दुनिया में अपनी जिंदगी कैसे काटे।

आज़ादी का
मतलब है हर तरह
की गुलामी,
भ्रष्टाचार, गरीबी
सबसे आज़ाद होना।

– रिया सिस्तु,
सातवीं

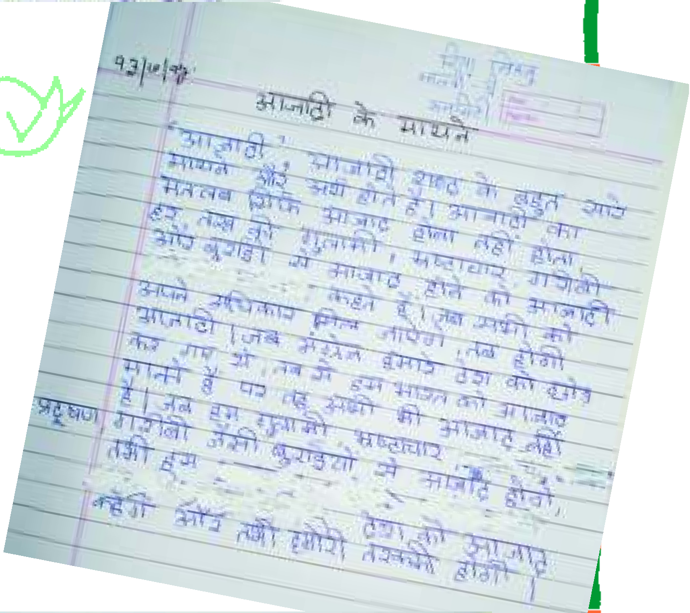

आजादी के मायने

हमें आज़ादी मिले
68 साल हो गए हैं।
फिर भी आज लोग
भीख माँगते दिख
जाते हैं।

– मेघा अग्रवाल

(सभी सनसिटी स्कूल,
गुड़गाँव में पढ़ते हैं।)

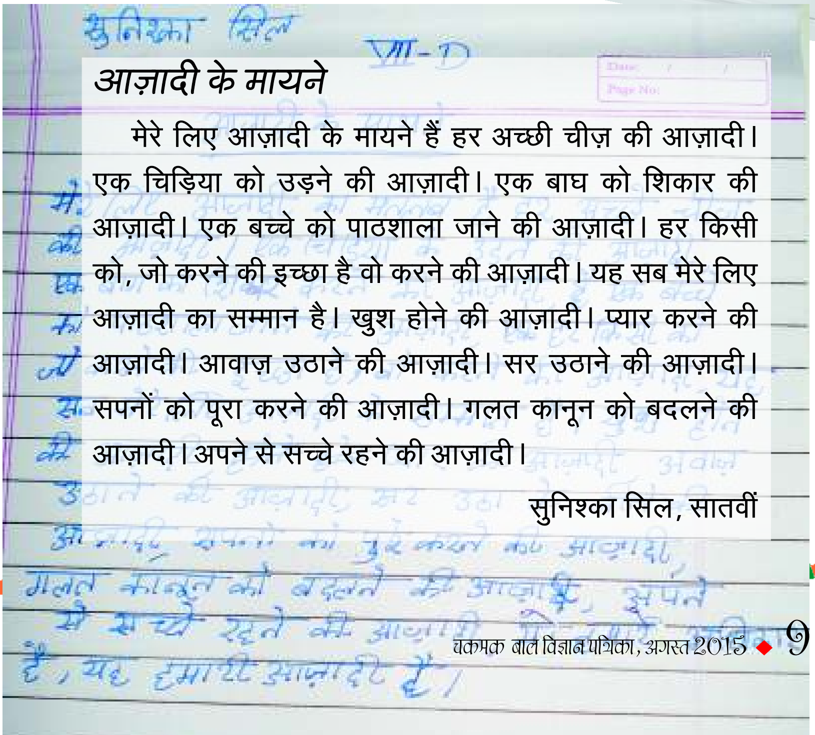

सुनिश्का सिल VII-D

आज़ादी के मायने

मेरे लिए आज़ादी के मायने हैं हर अच्छी चीज़ की आज़ादी। एक चिड़िया को उड़ने की आज़ादी। एक बाघ को शिकार की आज़ादी। एक बच्चे को पाठशाला जाने की आज़ादी। हर किसी को, जो करने की इच्छा है वो करने की आज़ादी। यह सब मेरे लिए आज़ादी का सम्मान है। खुश होने की आज़ादी। प्यार करने की आज़ादी। आवाज़ उठाने की आज़ादी। सर उठाने की आज़ादी। सपनों को पूरा करने की आज़ादी। गलत कानून को बदलने की आज़ादी। अपने से सच्चे रहने की आज़ादी।

सुनिश्का सिल, सातवीं

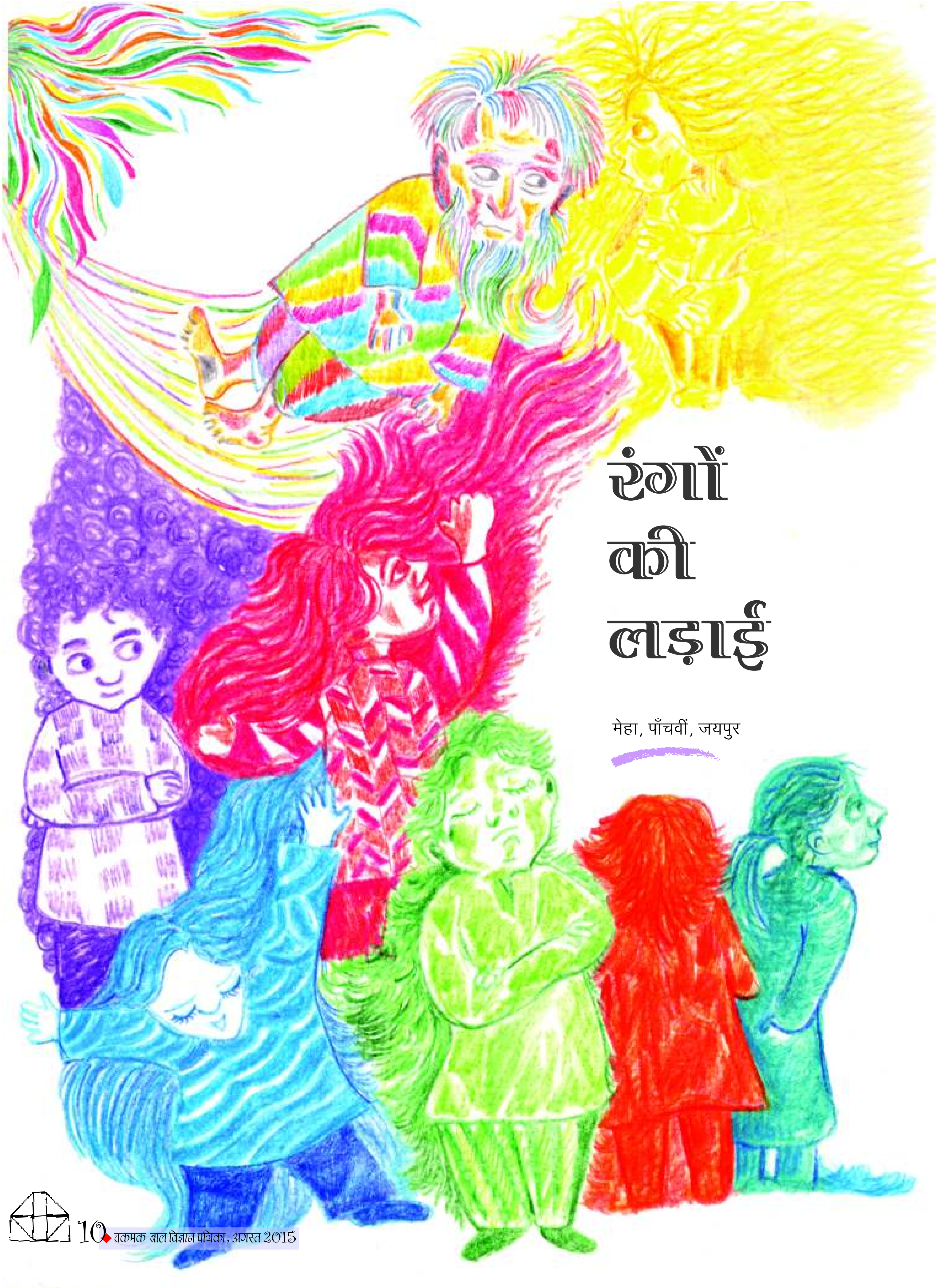

रंगों की लड़ाई

मेहा, पाँचवीं, जयपुर

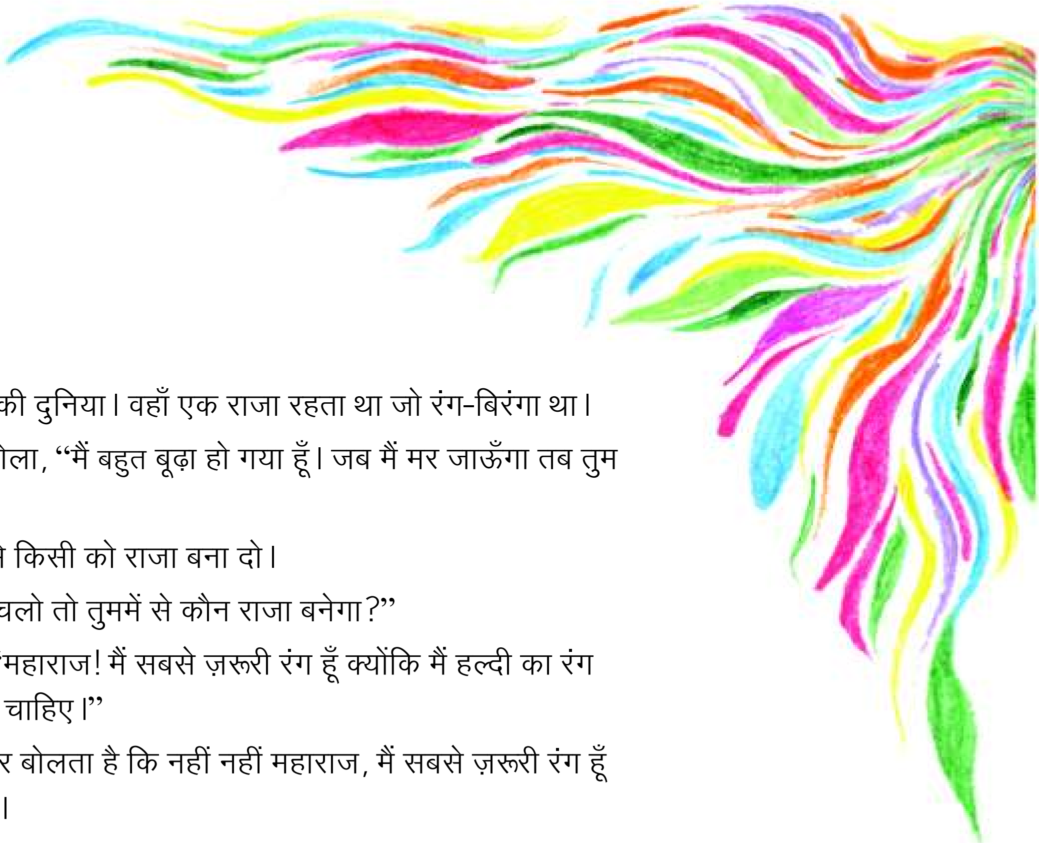

एक दुनिया थी। नाम था रंगों की दुनिया। वहाँ एक राजा रहता था जो रंग-बिरंगा था।

एक दिन राजा अपनी प्रजा से बोला, “मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। जब मैं मर जाऊँगा तब तुम रंगों को कौन सँभालेगा?”

लाल रंग बोला कि आप हममें से किसी को राजा बना दो।

राजा बोला, “अच्छा उपाय है। चलो तो तुममें से कौन राजा बनेगा?”

“सबसे पहले पीला रंग बोला, “महाराज! मैं सबसे ज़रूरी रंग हूँ क्योंकि मैं हल्दी का रंग होता हूँ। तो राजा तो मुझे ही बनना चाहिए।”

फिर नीला रंग आगे आता है और बोलता है कि नहीं नहीं महाराज, मैं सबसे ज़रूरी रंग हूँ क्योंकि मैं आसमान का रंग होता हूँ।

फिर हरे रंग ने कहा, “तुम सबसे तो मैं ज़रूरी रंग हूँ क्योंकि मैं पेड़-पौधों का रंग हूँ।”

फिर लाल बोला, “मैं सबसे ज़रूरी रंग हूँ क्योंकि मैंने ही यह उपाय बताया था। और तो और मैं खून का भी तो रंग हूँ।”

उनमें लड़ाई हो गई।

फिर राजा बोला, “अरे! लड़ना बन्द करो! तुम सभी राजा होओगे मेरे मरने के बाद।”

पीला बोला, “पर हम सब कैसे राजा बन सकते हैं? राजा तो एक ही होता है।”

राजा बोला, “क्योंकि मैं रंग-बिरंगा राजा हूँ। और इसलिए ही तो दुनिया रंगीन है। अगर तुममें से कोई एक रंग राजा बनेगा तो यह दुनिया रंगीन ही नहीं बचेगी। और अगर तुम सब राजा बनोगे तो यह दुनिया रंग-बिरंगी बनी रहेगी।”

सबको राजा की बात सही लगी।

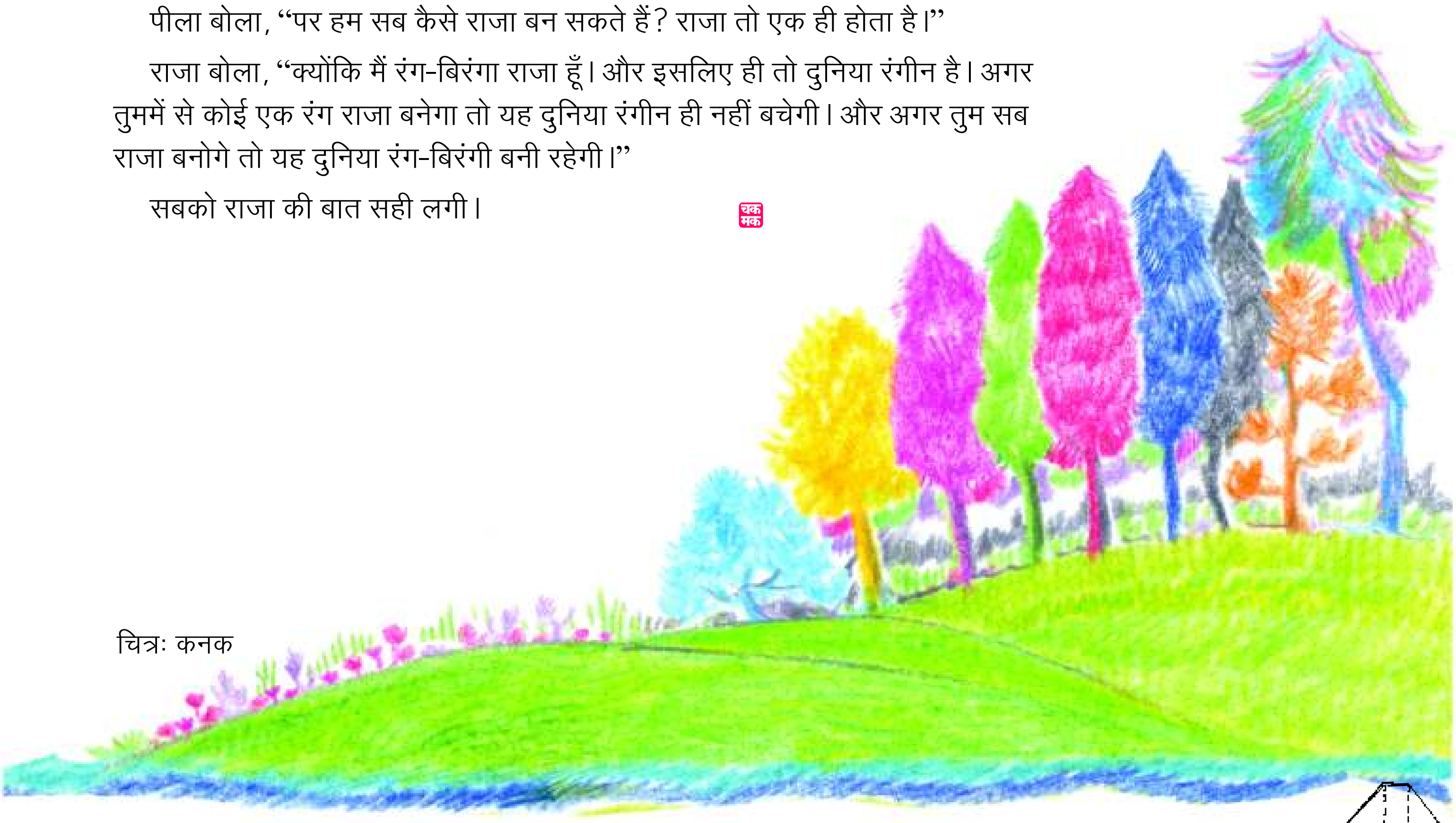

चित्रः कनक

मिट्टी-पत्थर की जासूसी

रश्मि पालीवाल

हमें पता चला कि भोपाल से कोई 75 किलोमीटर दूर रायसेन ज़िले के डाँगडोंगरी गाँव के पास पुरातत्व विभाग खुदाई के काम में लगा है और उन्हें बड़ी संख्या में पाषाण काल के औज़ार मिले हैं। हम नर्मदा के पास रहनेवालों को इक्का-दुक्का कोई स्टोन टूल कभी मिल जाता तो खुशी से फूले न समाते। और अब ये खबर कि हज़ारों की संख्या में ...। हमने अदेर पुरातत्व विभाग के सिमाद्री ओटा जी से इसकी इजाज़त माँगी जो उन्होंने एकदम खुले दिल से दे दी। उसी यात्रा का एक बयान...

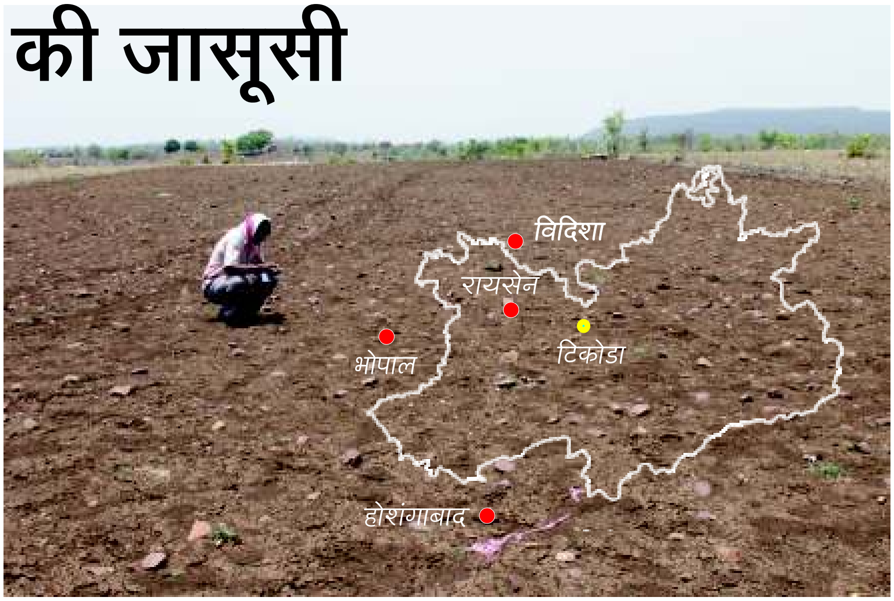

इस खेत में बिखरे हैं लाखों साल पुराने पत्थर के औज़ार... दो घड़ी इनके संग बैठे बगैर रहा न गया... लाखों साल पहले इन्हें किन्हीं हाथों ने छुआ था, गढ़ा था। हमारे शरीर में झुरझुरी फैल गई।

वो चारों ओर की पहाड़ी दिखाते हुए कह रहे थे, “यहाँ दिख रहा हर एक पत्थर यहाँ का नहीं है। इस घाटी के पार दिख रही दूसरी पहाड़ियों से लाया गया है। एक-एक टुकड़े को कोई जीव लेकर आया था।”

कोई भोपाली होता तो उसके मुँह से निकलता, “ये क्या कै रीए हो मियां? ऐसे केसे हो सकता है?”

“बिलकुल, देखिए यह जो पहाड़ी है जहाँ हम खड़े हैं वो पूरी बसाल्ट की बनी है। यह डेकन ट्रैप की काली चट्टान है जिससे काली मिट्टी बनती है। लेकिन इस पर बिखरे पत्थर तो लाल-भूरे बलुई पत्थर (सैंडस्टोन) हैं। घाटी के दूसरी तरफ खड़ी पहाड़ी सैंडस्टोन की है। और यहाँ इस पहाड़ी पर बिखरे ये सभी पत्थर के टुकड़े सैंडस्टोन (क्वार्टज़ाइट) के हैं। तो अब आप ही सोचिए कि ये यहाँ आए कैसे होंगे..?” वे बोले।

“हो सकता है पानी में बहकर आए हों..?” ये हमारा अन्दाज़ था।

“ये नहीं हो सकता। क्योंकि यह इलाका ऊँचाई पर है। पानी में बहकर आते तो नीचे की ओर आते। यहाँ ऊपर कैसे चढ़ेंगे?”

बात इतनी ही होती तो भी ठीक था। लेकिन उनकी अगली बात सुनकर तो हमारी आँखें फटी की फटी रह गईं। वे बोले, “ये पत्थर औज़ार बनाने के लिए लाए गए थे – कोई 2 से 15 लाख साल पहले बने हैं ये औज़ार।”

हमने घूमकर देखा। फसल कट चुकी थी। खेत को जोत दिया गया था। पूरे खेत में काली मिट्टी के ढेलों के बीच-बीच में वो औज़ार बिखरे पड़े थे जिन्हें लाखों साल पहले किन्हीं हाथों ने छुआ था, गढ़ा था। हमारे शरीर में झुरझुरी फैल गई।

15 लाख साल पहले तो हमारी जैसी मानव प्रजाति ही विकसित नहीं हुई थी। ये हमसे पहले की प्रजाति के लोगों के बने औज़ार हैं – जो उस समय पाई जाती थी जिसे अशूलियन काल कहा गया है। और फिर वह प्रजाति लुप्त हो गई।

ऊँचाई पर पत्थरों का बहकर आना मुमकिन नहीं...

हम इस विचार से स्तब्ध थे कि हम कितने पुरातन लोगों के इलाके में आज खड़े हैं... और लाखों साल पहले की कारीगरी को अपने हाथों से छू रहे हैं।

वो औज़ार बेहद तेज़ और ताज़ी धारवाले थे। हम नर्मदा नदी के आसपास के क्षेत्र में कई बार ऐसे औज़ारों को सड़क किनारे से भी उठा चुके हैं। पर उनमें से अधिकतर कुन्द धारवाले होते हैं। वे नदी-नालों में लुढ़क-लुढ़ककर, बहकर दूर तक चले आए होते हैं – अपनी मूल जगह से बहुत दूर। रेत-गिट्टी-पत्थर के ट्रकों में भरकर वे सड़क व भवन निर्माण के सामान के तौर पर खप चुके होते हैं – जब तक किसी ऐसे व्यक्ति की निगाह उन्हें पहचान कर उठा न ले जो आदिमानव के औज़ारों की शक्ल जानता हो। पर आज इस पहाड़ी पर वे अपने लगभग मूल स्थान और स्थिति में हमें पड़े दिखे। यह पहाड़ी 30-40 साल पहले तक घने जंगलों से ढँकी थी। मिट्टी की जिस परत में ये औज़ार दबे थे वह पेड़ों की जड़ों से बँधी हुई सुरक्षित थी। पर पिछले कुछ सालों में यहाँ खेती, पशुपालन, लकड़ी के व्यापार जैसे कामों का दबाव बढ़ता जा रहा है और जंगल कट गए हैं। मिट्टी उघाड़ी होकर बहने लगी है और उसमें दबे पड़े ये अशूलियन काल के औज़ार उजागर हो रहे हैं। शायद उस स्थिति में जिसमें उन्हें बनाने व इस्तेमाल करनेवालों ने छोड़ा होगा – लाखों साल पहले।

अविश्वसनीय लगता है – लाखों सालों से ऐसे ही पड़े रहे ये पत्थर? लाखों सालों में पहाड़ी की बनावट में भी तो कई बदलाव आए होंगे... और यह कैसे पता चला कि ये औज़ार इतने साल पुराने हैं? ऐसी बहुत-सी उधेड़बुन हमारे मन में चल रही थी।

खैर, इन औज़ारों के काल के सवाल का जवाब तो मिल जाता है क्योंकि ऐसे पत्थर के औज़ार दुनिया के कई इलाकों में मिले हैं। जिस मिट्टी में वे मिलते हैं उसकी परत की जाँच-पड़ताल कर के समझ बनी है कि ऐसे औज़ार 10-15 लाख साल पहले बनना शुरू हुए और 2 लाख साल पहले तक बनाए जाते रहे। मज़े की बात यह है कि इतने लम्बे समय में इन औज़ारों के डिज़ाइन में कोई अन्तर नहीं आया। इस तरह के औज़ारों का अध्ययन सबसे पहले फ्रांस की सैंट अशूलियन नामक जगह पर हुआ था। सो इन औज़ारों का नाम अशूलियन पड़ा। और अफ्रीका व एशिया में जहाँ-जहाँ ऐसे औज़ार मिले उन सबको अशूलियन औज़ारों की श्रेणी में स्वीकार किया जाने लगा। औज़ार बनाने के इतिहास का यह दूसरा चरण माना जाता है क्योंकि हमें इनसे भी पुराने काल के औज़ार मिलते हैं।

पत्थर के ये औज़ार इतने धारदार और ताज़ा हाल में दिख रहे हैं – इसके कई कारण हैं। यहाँ नालों के बनने व मिट्टी काटने के ज़्यादा निशान नहीं हैं। यह ऊँचा इलाका है जो अभी हाल तक घने जंगल से ढँका था। यहाँ जो बसाल्ट मिट्टी है वह भी इस तरह की है कि उसमें चीज़ें बदलती-बिगड़ती नहीं हैं। दूसरी जगहों पर, जैसे होशंगाबाद में आदमगढ़ की पहाड़ी के आसपास लेटराइट मिट्टी है – जिसमें पड़े ऐसे ही औज़ार पुराने व घिसे हुए दिखते हैं।

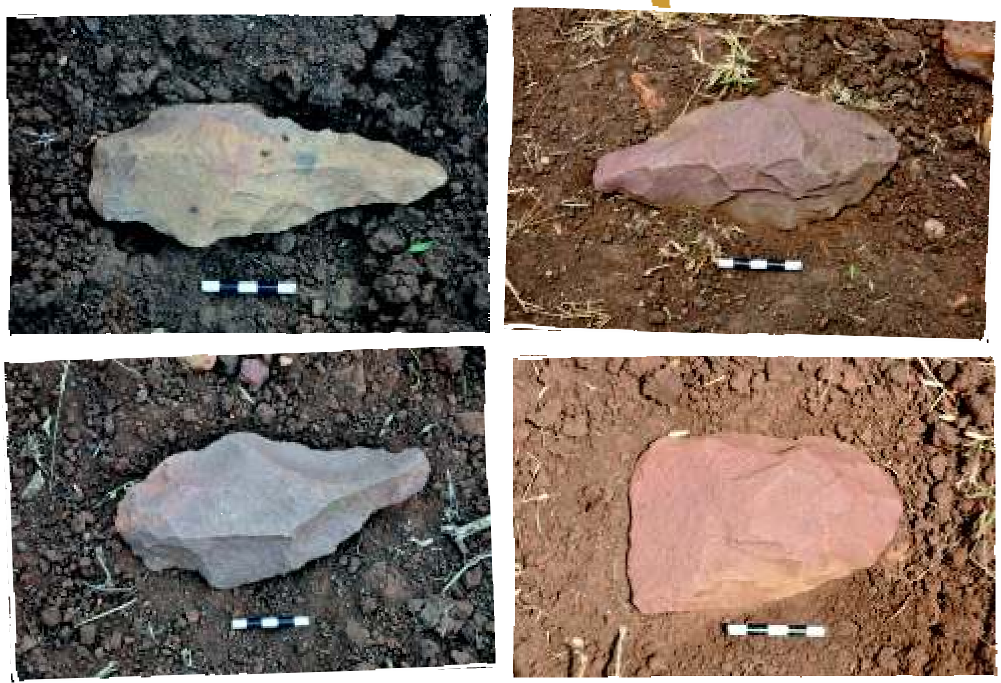

बसाल्ट मिट्टी और घने जंगल से ढँके होने के कारण ये औज़ार इतने धारदार और ताज़ा हाल हैं

मानवतुल्य प्रजातियाँ

ऑस्ट्रालपिथिसीन – दो टाँगों पर चलते थे, यानी हाथों का उपयोग करते थे। लकड़ी और पत्थर का उपयोग करते थे लेकिन औज़ार नहीं बनाते थे। आज से 38 लाख साल पहले ये अफ्रीका में रहते थे।

होमो हैबिलिस – हाथों का बखूबी उपयोग करते थे और पत्थर के औज़ार बनाते थे। अफ्रीका में आज से 26 लाख से 17 लाख साल पहले तक रहते थे और यूरोप, चीन व हिमालय की तलहटी तक फैल गए थे।

होमो एरेक्टस – 18 लाख से 2 लाख साल पहले तक रहे। अफ्रीका से शुरू होकर भारत, यूरोप, चीन, इंडोनेशिया तक फैले। इन्होंने आग पर काबू पाया। भाषा का उपयोग किया। पत्थर के विविध और उन्नत औज़ार बनाए। सामूहिक जीवन बिताया। शिकार के अलावा वे कन्द-मूल खोदते थे और फल इकट्ठा करते थे।

पहाड़ियों पर जहाँ पास में जंगल हों, खुले मैदान हों, पानी के स्रोत हों वहाँ छोटे-छोटे झुण्डों में छोटे-छोटे शिविरों में लेकिन कम समय के लिए रहते थे। वे हमेशा एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते थे।

उनके औज़ारों को प्रायः अशूलियन औज़ार कहते हैं। वे किसी बड़े पत्थर को खास तरह से तोड़कर, उस पर धार बनाकर उपयोग करते थे।

होमो सेपियन सेपियन – आधुनिक मानव। ये भी अफ्रीका में आज से लगभग एक लाख बीस हज़ार साल पहले हुए और वहाँ से पूरे विश्व में फैल गए। ये पत्थर के छोटे टुकड़ों के बारीक और विविध औज़ार बनाते थे। इनके आने के बाद होमो एरेक्टस लुप्त हो गए।

पानी के बहाव से नाले में एक तरफ इकट्ठा हुए बहुत सारे औज़ार।

यह सारी चर्चा करते-करते हम पहाड़ी से नीचे उतर रहे थे और एक समतल से मैदान के पास पहुँच गए। ओटा जी ने हमें आगे बढ़ने से रोक लिया। किनारे खड़े होकर उन्होंने हमें वो अद्‌भुत दृश्य दिखाया – करीब 30 फीट गुणित 30 फीट का वह मैदान – जहाँ मिट्टी पर सैकड़ों औज़ार बिखरे थे। ओटा जी कह रहे थे कि यहाँ उन लोगों का शिविर रहा होगा – जहाँ वे औज़ार बनाते थे और उनसे अपने दैनिक कामकाज करते थे... वे थोड़े समय के लिए यहाँ रुके हों यह उसकी निशानी हो सकती है। इतनी संख्या में आसपास और कहीं औज़ार नहीं दिखते हैं...

पास ही एक नाला था। उसे देखकर हमने पूछा, "नाले में तो बड़ी संख्या में औज़ार पड़े होंगे? बहकर आए होंगे?"

"हाँ ज़रूर। वे अलग ही दिख जाते हैं। चलिए देखते हैं कि उनमें और इनमें क्या फर्क है।" ओटा जी बोले।

...पानी के बहाव से नाले में एक तरफ बहुत सारे औज़ार इकट्ठा हो गए हैं – उनकी लम्बाईवाली धुरी एक ही दिशा में दिख रही है – पानी बहने की दिशा में। "देखिए, जब कोई चीज़ पानी के साथ बहकर आती है तो उसकी जमावट ऐसी ही होती है..."

"... अब उस मैदान में औज़ारों की जमावट देखिए – फर्क दिखा? मैदान में औज़ार किसी एक दिशा में नहीं जमे हैं बल्कि बेतरतीब पड़े हैं। जिस तरह उन्हें छोड़ा गया था?"

हाँ। मैदान में उनकी लम्बाई की धुरी किसी एक खास दिशा में न होकर – अलग-अलग दिशाओं में थी।

"तो ये जो पत्थर हैं वे पानी में बहकर यहाँ इकट्ठा नहीं हुए हो सकते? ये लोगों के रहने के इलाके में रखे हुए औज़ार ही हो सकते हैं.. ऐसी जमावट बिरले ही उजागर होती है – यहाँ संयोग से हमें मिल गई है। हम इस मैदान की एक-एक

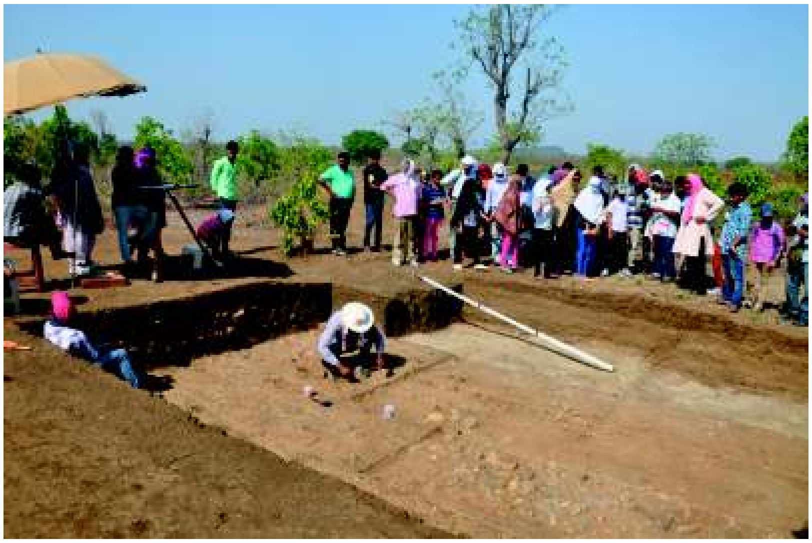

बारीक ब्रुश से धीरे-धीरे पत्थरों पर से मिट्टी हटाना बेहद धीरज का काम है।

बात की जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। इसलिए किसी को कुछ भी छूने नहीं दे रहे – पर अब मैं आपको वहाँ ले चलता हूँ जहाँ के पत्थरों को आप उठाकर देखें तो मुझे कोई एतराज़ नहीं होगा...”

वे हमें नाला पार कर के एक खेत में ले आए। आधा एकड़ का जुता हुआ खेत था जिसमें अभी बोनी नहीं हुई थी। मिट्टी के लौंदे उल्टे-पुल्टे बिछे थे – और उन्हीं के साथ-साथ बिछे हुए थे पत्थर के अशूलियन काल के हज़ारों औज़ार!

ओटा जी ने कहा, “ये औज़ार हमें अपनी मूल स्थिति में नहीं मिले, इसलिए हमारे बहुत काम के नहीं हैं। खेत के मालिक ने कई सारे तो बीन-बीनकर बागड़ में लगा दिए – पर इतने हैं कि कहाँ तक हटाएँ! तो ये मिट्टी के साथ जुते हुए पड़े हैं.. आप इन्हें उठाकर देख सकते हो।”

पिछले 30 सालों से हम खुद को पत्थरों को पैनी निगाहों से परखने और चुन-चुनकर उठाने के काम में काफी प्रशिक्षित कर चुके थे। पर आज हम शब्दशः धराशायी हो गए – क्योंकि यहाँ न कुछ परखना था न चुनना। हरेक पत्थर औज़ार था। आज एक भी पत्थर उठाने की ज़रा भी लालसा न हुई।

“इतने सारे औज़ार इस जगह पर कैसे आए? कितनी बड़ी आबादी रही होगी यहाँ?” हमने पूछा।

“नहीं, ये औज़ार किसी एक समय के लोगों के बनाए हुए नहीं हो सकते। लाखों सालों की आबादियों के अवशेष हैं ये – और मज़ा यह कि सब पत्थर दूर से लाए गए हैं.. यहाँ के ओरीजनल पत्थर नहीं हैं...”

एक सवाल मेरे मन में अभी भी खटक रहा है – लाखों सालों में मिट्टी – पानी – चट्टान में बड़ी-बड़ी उथल-पुथल हो सकती है... तो इस मामले का कोई और स्पष्टीकरण भी हो सकता है?

ओटा जी की परिकल्पना हमारे कई सवालों के आगे टिकी रही – पर मन में सन्देह बना रहा। उन्होंने एक और जानकारी दी जिससे कौतुहल और सन्देह और बढ़ गया। उन्होंने हमें पहाड़ी के विभिन्न भागों में हो रहे उत्खनन दिखाए। पहाड़ी के निचले भाग में एक चौकोर गड्ढा खुद रहा था। उसके ऊपर धागे से एक वर्गाकार जाल बना था। ऊँचाई पर एक मंच था जिस पर चढ़कर एक फोटोग्राफर तस्वीर खींच रहे थे। गड्ढे में तीन-चार लोग बैठकर बारीक ब्रुश से धीरे-धीरे पत्थरों पर से मिट्टी हटा रहे थे। कड़क मिट्टी हो तो छोटी-सी खुरपी या कुदाल से खोद रहे थे।

ट्रेंच में हर 5 सेंटीमीटर पर पिनें लगाई हुई थीं। हर 5 सेंटीमीटर पर मिट्टी आदि का सैंपल लिया गया था...

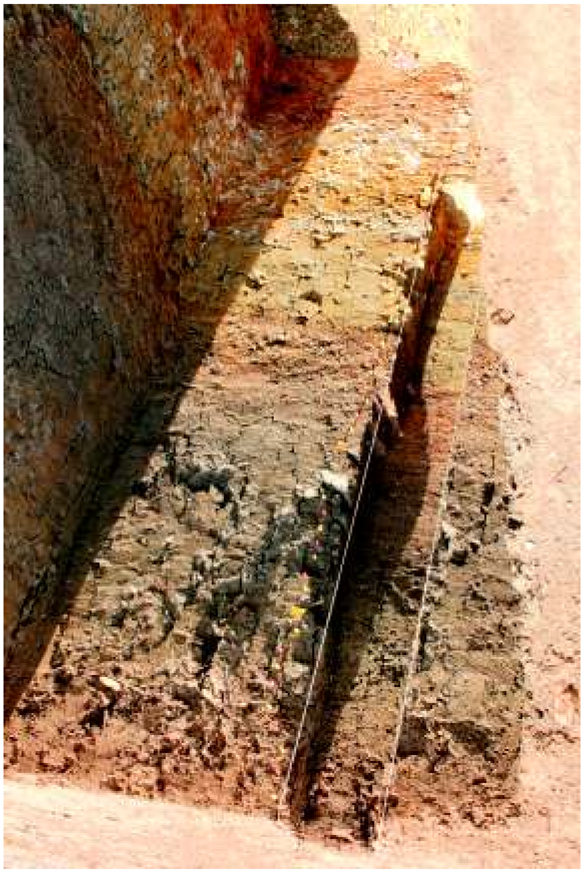

फिर हम पहाड़ी पर और ऊपर गए। यहाँ 30 फीट गहरी और 5 गुणित 5 फीट लम्बी-चौड़ी ट्रेंच (खंदक) दिखाई दी। ओटा जी के निर्देश से यह और गहरी खोदी जा रही थी – वहाँ तक जहाँ पहाड़ी की मूल चट्टान मिलने लगे। इस ट्रेंच में पहाड़ी की मिट्टी और चट्टान का विकास कैसे हुआ उसके प्रमाण उजागर हो रहे थे। ओटा जी की टीम ने ट्रेंच में हर 5 सेंटीमीटर पर पिनें लगाई हुई थीं। हर 5 सेंटीमीटर पर मिल रही मिट्टी आदि का सैंपल लिया गया था और जाँच के लिए भेजा गया था।

ओटा जी की परिकल्पना थी कि लाखों साल पहले यहाँ कोई झील या तालाब थी। आज ऐसी किसी चीज़ का नामोनिशान.... माफ करें – है.. जो.. हमें और आपको दिख नहीं सकता पर इन जासूसों को दिख रहा है।

ओटा जी बताने लगे, “देखिए यहाँ कुछ सेंटीमीटर नीचे की परत की जो मिट्टी है उसमें क्ले है – और मैग्नीज़ के नॉड्यूल हैं... यह उस मिट्टी की खासियत है जो किसी ठहरे हुए पानी के नीचे बनी हो। हम इस परिकल्पना को जाँचने के लिए और उस लाखों साल पुराने तालाब के विस्तार का पता लगाने के लिए एक बड़ी परिधि में अलग-अलग जगह कुछ और ट्रेंच खोदेंगे और मिट्टी की जाँच करेंगे।” ओटा जी ने बताया कि इनमें मिली मिट्टी की बारीकी से जाँच होगी और उसमें लाखों साल पुराने परागकणों को खोजा जाएगा और उनका विश्लेषण किया जाएगा। इससे पता लगाया जा सकता है कि यहाँ किस तरह की वनस्पति उन दिनों उग रही थी।

इस मिट्टी में लाखों साल पुराने परागकणों को खोजा जाएगा और उनका विश्लेषण किया जाएगा। इससे पता लगाया जा सकता है कि यहाँ किस तरह की वनस्पति उन दिनों उग रही थी।

लाखों साल पहले के फूलों के परागकणों की जाँच होगी... यह सोचकर ही हमारा दिमाग चकराने लगा।

शुक्र है तभी हमें ओटा जी ने भोजन के लिए आमंत्रित किया। खाना लाजवाब था – कैरी पुदीने की खट्टी-मीठी चटनी, साग-सब्ज़ी, दाल, गर्मागरम रोटी और अन्त में खीर। वाह क्या बात थी। हमने सोचा भी नहीं था कि इस जंगल में इतना स्वादिष्ट भोजन हमें मिल जाएगा।

ओटा जी के 8-10 साथी वहीं एक मैदान में लगे तम्बुओं में रह रहे थे – बारिश के मौसम को छोड़कर पिछले दो साल से। यह कैम्प देखते ही बनता था। तम्बू, रसोई, भोजन कक्ष, शौचालय, कार्यालय – सारी व्यवस्था थी। सबसे ज़बरदस्त थी उन सहायकों की मेहनत जो खुले में लगे इस कैम्प को बहुत साफ रखते थे, और कपड़े धोने, इस्त्री करने, खाना बनाने, खिलाने, बर्तन साफ करने जैसे सभी कामों को इस दक्षता से कर रहे थे कि वहाँ रहना अधिक से अधिक सुविधाजनक हो सके और पुरातत्व के विशेषज्ञों को अपने काम को समय पर पूरा करने में कोई अड़चन न महसूस हो।

इतने लोगों की इतनी कठोर मेहनत से मिट्टी-पत्थर की ऐसी जासूसी करने से क्या मिलेगा – इसका जवाब आसपास रह रहे लोगों ने यह दिया कि ज़रूर कोई खज़ाना या सोना मिलने की सम्भावना है तभी यह उठा-पटक हो रही है। पर धरती और उस पर बीते जीवन की ऐसी अन्तरंग झाँकियाँ भी एक तरह का खज़ाना ही तो हैं। क्योंकि, जीवन जीने के साथ-साथ हम उसके बारे में सोचते भी तो हैं। और जीवन के बारे में हमारी सोच को बनाने में इतिहासकारों और पुरातत्वविदों की खोजें ही हमारे काम आती हैं।

ओटा जी और उनकी टीम के कुछ साथी

सभी चित्रः पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग

मेरा पन्ना

बारिश

बारिश में भीगा हुआ,
जब मैं नाच रहा था मस्ती में,
तब मैंने एक व्यक्ति देखा,
जो गा रहा था कश्ती में।

कागज़ की नाव
मैंने बनाई झट-से
उसको फिर मैंने पानी में तैराया फट-से।

झन-झन-छन मोर नाचे
अपने पंख फैलाए।
थड़-थड़ा-थड़ बिजली कड़के,
ऐसा लगे वो गुर्राए।

स्वादिष्ट खाने की खुशबू,
मेरे घर से आए।
और मुझे कंपकपाहट
कड़कती इस बिजली से आए।

—सान्या मलिक, छठी, डी.पी.एस लुधियाना, पंजाब

हमारा परिवेश

हमारे गाँव में सब लोग बोल रहे थे कि इस साल बारिश नहीं होगी। लेकिन जब बारिश हुई तो सब लोग के घर में पानी टपकने लगा और जो इंसान धान बोए थे उनका धान डूब गया था और बह गया था। तो सब लोगों ने फिर से धान उगाए पर फिर बारिश नहीं हुई।

—हिमांशी व पायल,
अज़ीमप्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

—आशु काकड़े, चौथी, आनन्द निकेतन स्कूल सेवाग्राम,
वर्धा, महाराष्ट्र

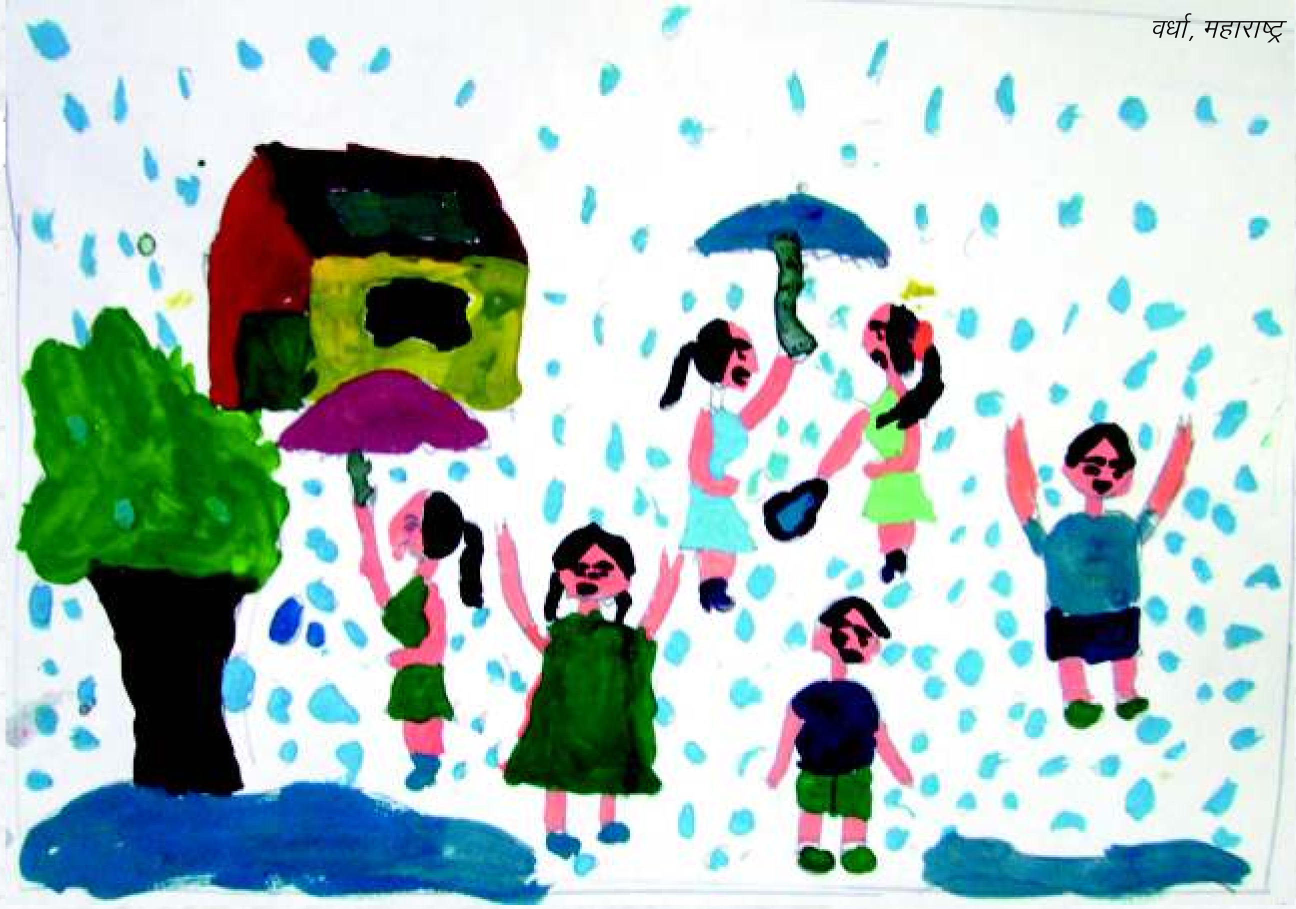

दोस्त

छठी किस्त

चित्रकल्पना : शशिकिरण

अगले दिन गोविन्दो 8 बजकर 45 मिनट तक मेरे घर नहीं आया।

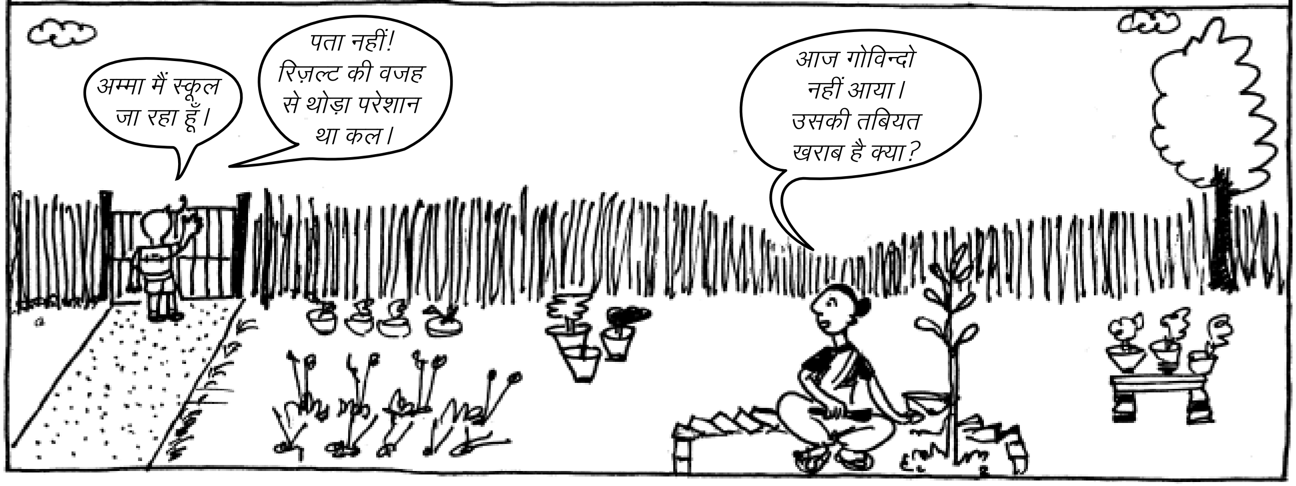
अम्मा मैं स्कूल जा रहा हूँ।
पता नहीं! रिज़ल्ट की वजह से थोड़ा परेशान था कल।
आज गोविन्दो नहीं आया। उसकी तबियत खराब है क्या?

स्कूल जाकर पता चला कि गोविन्दो स्कूल आया था पर दूसरे रास्ते से।

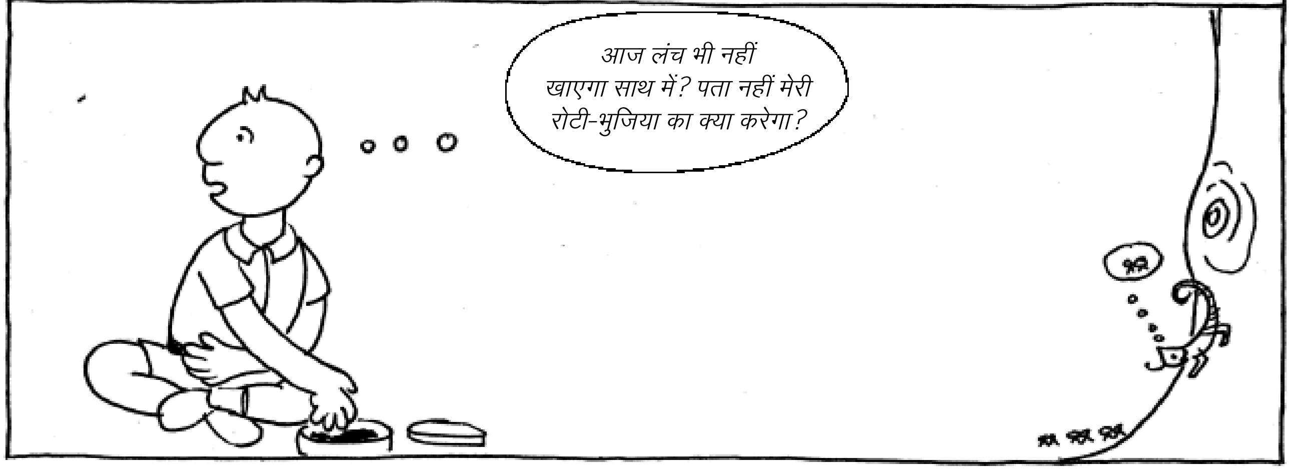
आज लंच भी नहीं खाएगा साथ में? पता नहीं मेरी रोटी-भुजिया का क्या करेगा?

गोविन्दो शाम को छुट्टी के बाद भी अकेले ही घर चला गया।

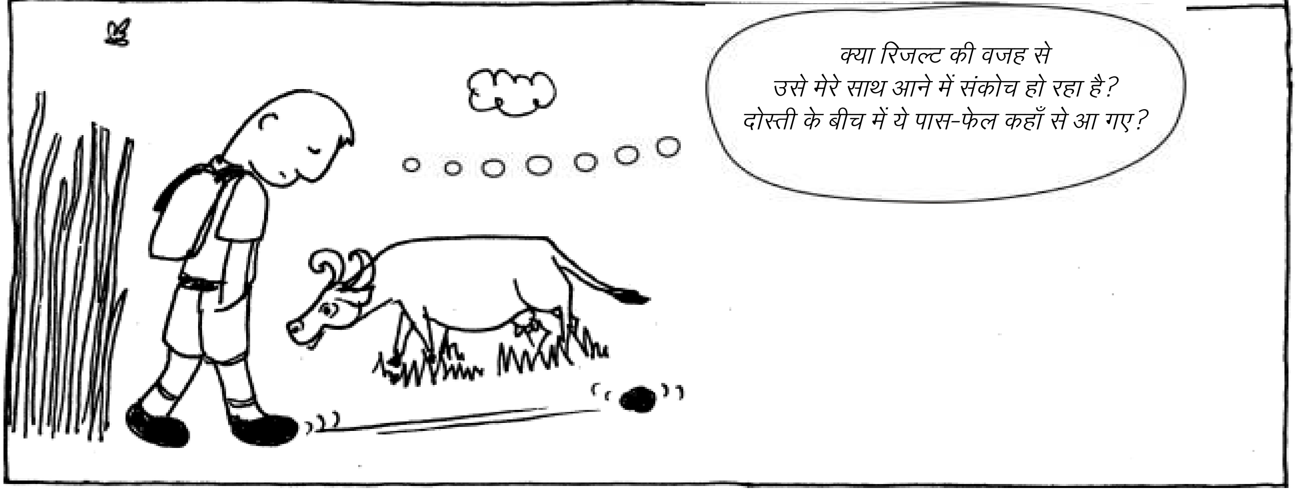
क्या रिजल्ट की वजह से उसे मेरे साथ आने में संकोच हो रहा है? दोस्ती के बीच में ये पास-फेल कहाँ से आ गए?

अगले कुछ महीने अकेले ही स्कूल आना-जाना होता रहा।

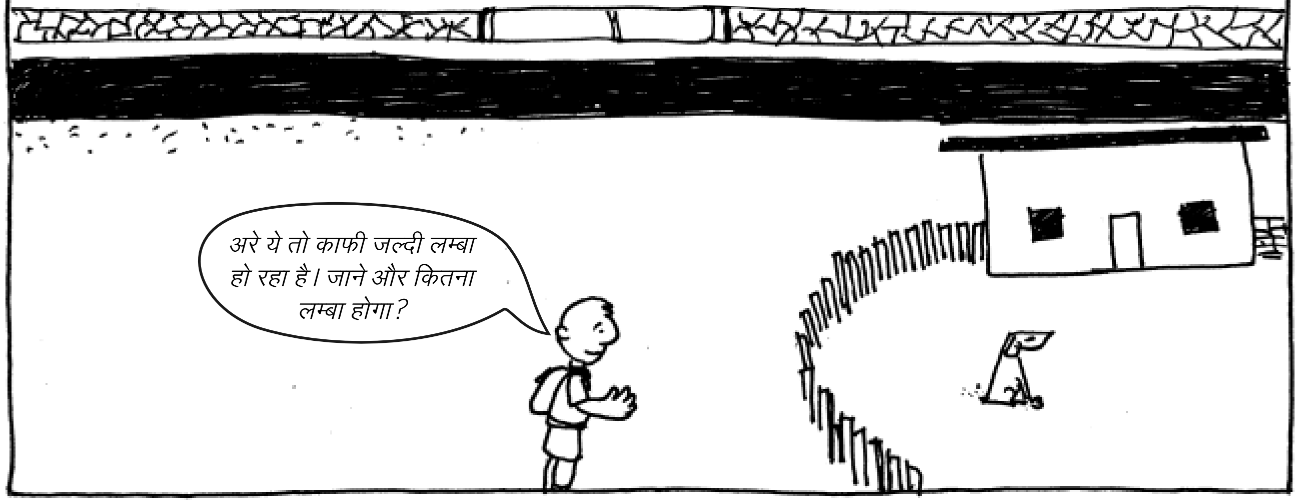
अरे ये तो काफी जल्दी लम्बा हो रहा है। जाने और कितना लम्बा होगा?

एक दिन जब स्कूल से घर पहुँचा तो मेरा चचेरा भाई घर आया हुआ था।

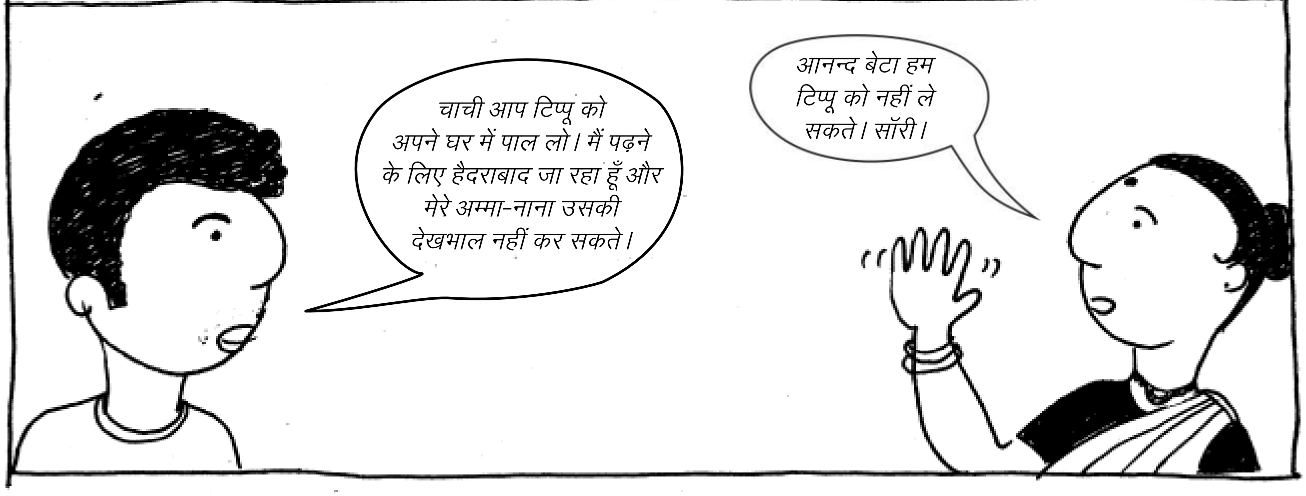
चाची आप टिप्पू को अपने घर में पाल लो। मैं पढ़ने के लिए हैदराबाद जा रहा हूँ और मेरे अम्मा-नाना उसकी देखभाल नहीं कर सकते।
आनन्द बेटा हम टिप्पू को नहीं ले सकते। सॉरी।

वैसे टिप्पू के बारे में ज़रा बता दूँ।

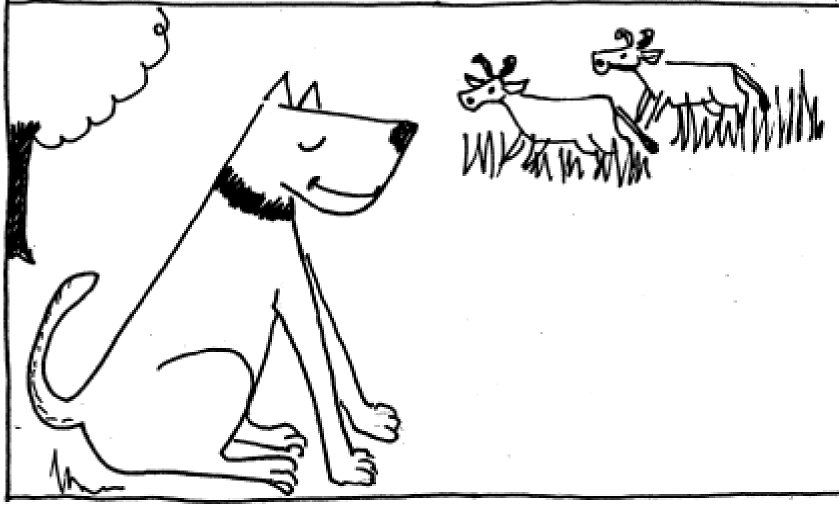

टिप्पू एक मिक्स्ड ब्रीड (दो या दो से ज़्यादा प्रजातियों के कुत्तों से पैदा हुआ) का शानदार कुत्ता था। गहरे भूरे रंग का टिप्पू चार साल का था। उसे भैंसों को खदेड़ने में बड़ा मज़ा आता था। वह एक दिन में एक लीटर तक दूध पी जाता था।

वैसे अम्मा की बात हमेशा फायनल होती थी। पर मैंने फिर से कोशिश करने की सोची।

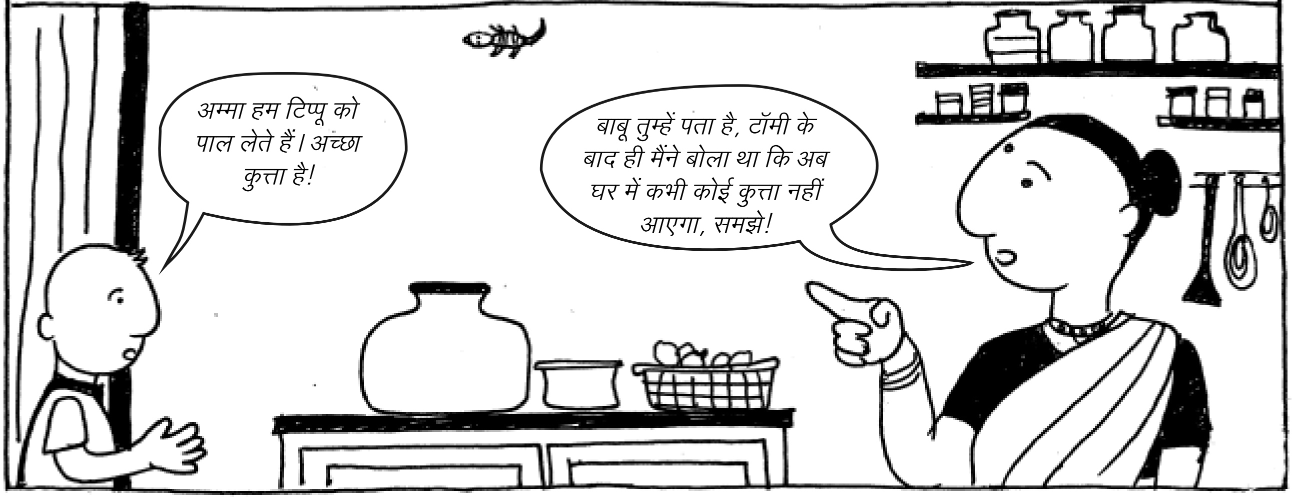
अम्मा हम टिप्पू को पाल लेते हैं। अच्छा कुत्ता है!
बाबू तुम्हें पता है, टॉमी के बाद ही मैंने बोला था कि अब घर में कभी कोई कुत्ता नहीं आएगा, समझे!

मैंने फिर कोशिश नहीं की पर टिप्पू के चक्कर में टॉमी की याद आ गई।

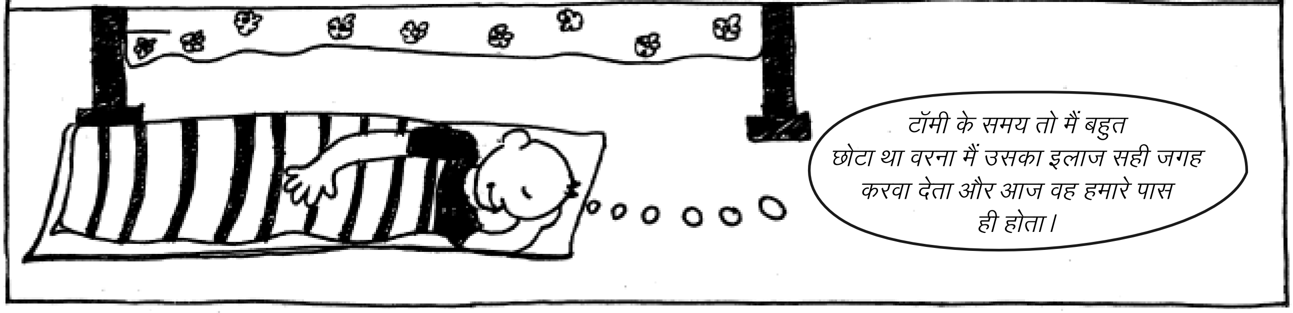
टॉमी के समय तो मैं बहुत छोटा था वरना मैं उसका इलाज सही जगह करवा देता और आज वह हमारे पास ही होता।

टॉमी की बात सुनकर घर पे सभी उदास हो जाते थे। टॉमी एक देसी नस्ल का कुत्ता था। उसे मेरी दोनों दीदियाँ कहीं से लेकर आई थीं। तब मैं दूसरी क्लास में था।

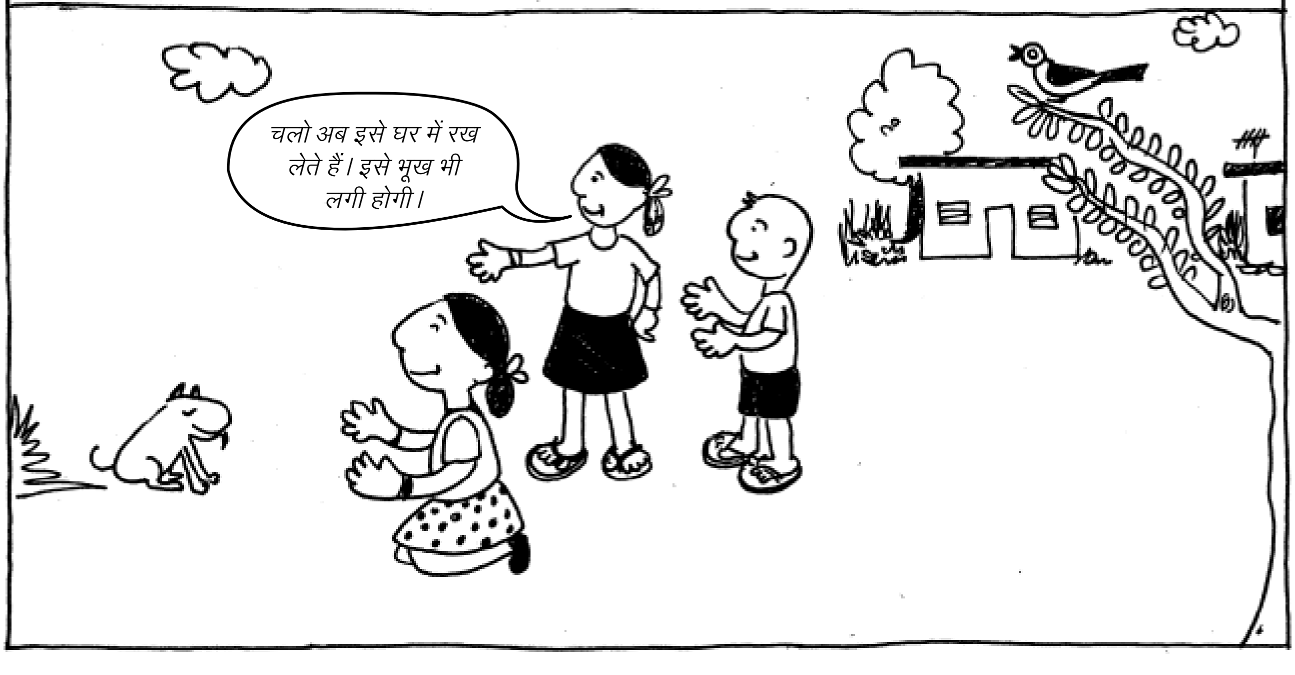
चलो अब इसे घर में रख लेते हैं। इसे भूख भी लगी होगी।

क्योंकि हम शाकाहारी और ऊपर से ब्राह्मण थे, पिताजी को कुत्ता पालने की बात ज़्यादा पसन्द नहीं आई। कुत्ते का घर के अन्दर आना अशुद्ध माना जाता था।

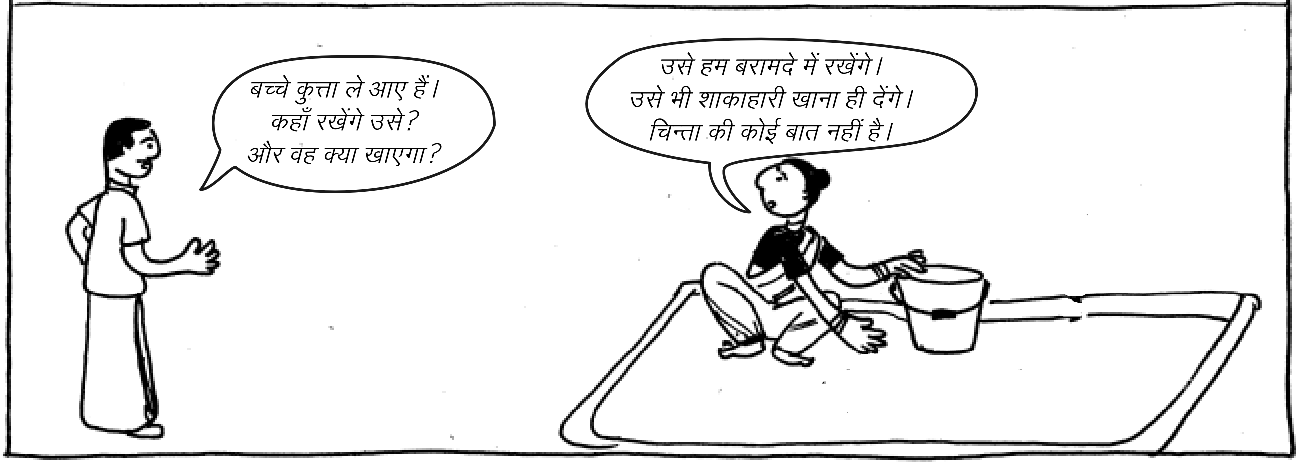
बच्चे कुत्ता ले आए हैं। कहाँ रखेंगे उसे? और वह क्या खाएगा?
उसे हम बरामदे में रखेंगे। उसे भी शाकाहारी खाना ही देंगे। चिन्ता की कोई बात नहीं है।

वैसे शुरुआत तो बरामदे से हुई पर धीरे-धीरे टॉमी बेरोक-टोक पूरे घर में घूम सकता था।

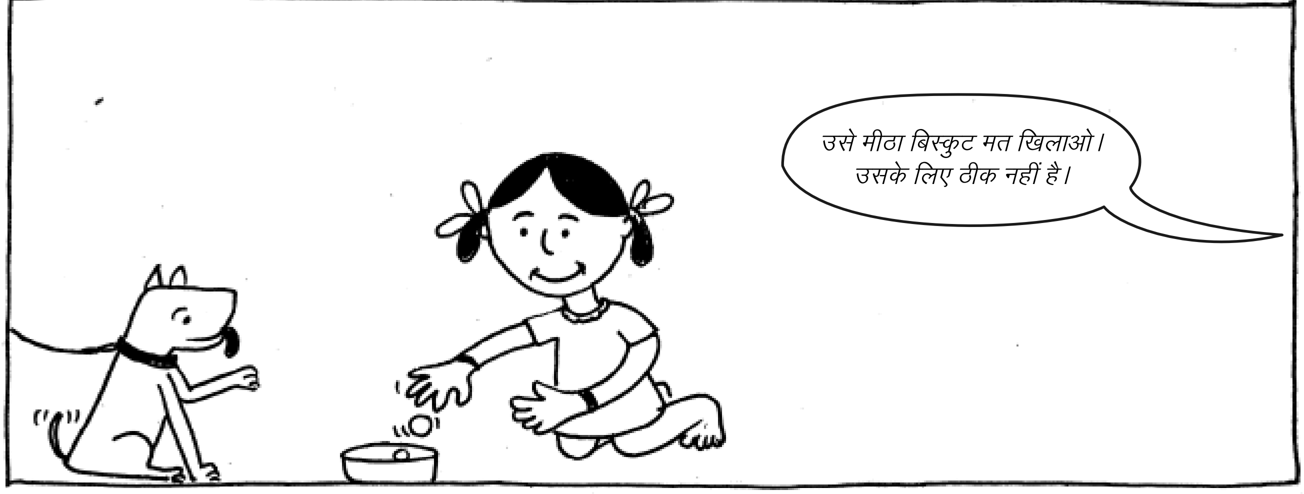
उसे मीठा बिस्कुट मत खिलाओ। उसके लिए ठीक नहीं है।

टॉमी को जूते चुराने, छुपाने और चबाने में बड़ा मज़ा आता था। पहले ही महीने में उसने घर में लगभग हर किसी के जूते-मोजे चबा डाले थे।

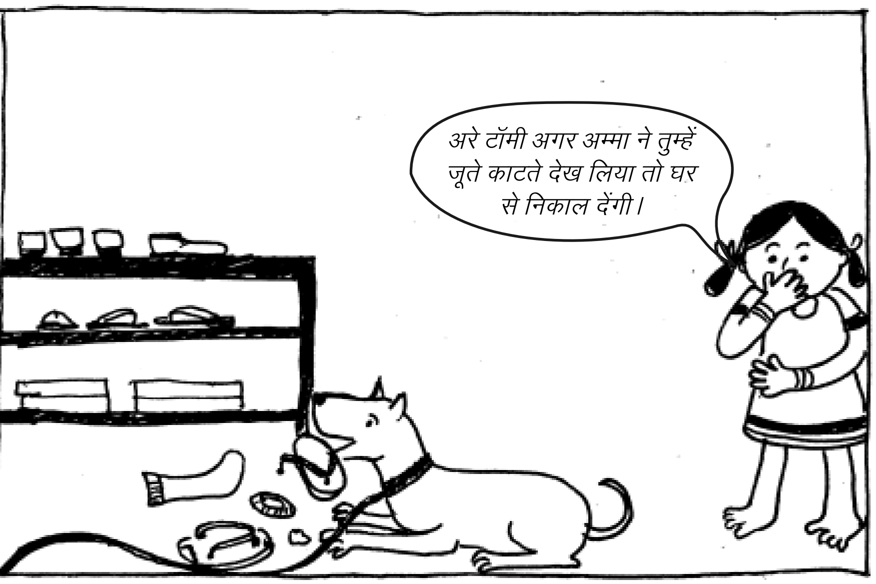
अरे टॉमी अगर अम्मा ने तुम्हें जूते काटते देख लिया तो घर से निकाल देंगी।

जारी...

माथापच्ची

1 सूखे कागज़ के बजाए गीले कागज़ को फाड़ना आसान क्यों होता है?

3 सारा और उसकी माँ सवालों का खेल खेल रहे थे। सवालों का सही जवाब देने पर सारा को साइकिल मिलनेवाली थी। माँ ने उसे कहा कि यह उनका आखिरी सवाल होगा। मम्मी बोलीं - अब तुम्हें उस मेज़ का केन्द्रबिन्दु बताना है जहाँ मेरी किताब रखी है। सारा ने मेज़ के बीचोंबीच उँगली रखकर बताया पर वो एकदम ठीक-ठीक नहीं बता पाई। माँ ने कहा कि यह केन्द्र कैसे हुआ? सारा ने कुछ ऐसा जवाब दिया कि गलत उत्तर देने के बाद भी माँ ने उसे साइकिल दिला दी। क्या तुम बता सकते हो कि सारा ने ऐसा क्या जवाब दिया होगा?

5 राजू अपने स्कूल से 12 मीटर उत्तर दिशा में चला। फिर दाएँ मुड़कर 10 मीटर चला। फिर वह दुबारा दाएँ मुड़ा और 12 मीटर चला और फिर बाएँ मुड़कर 5 मीटर चला और घर पहुँच गया। उसका घर स्कूल से कितनी दूरी पर और किस दिशा में हैं?

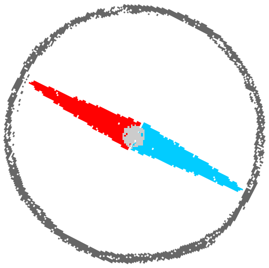

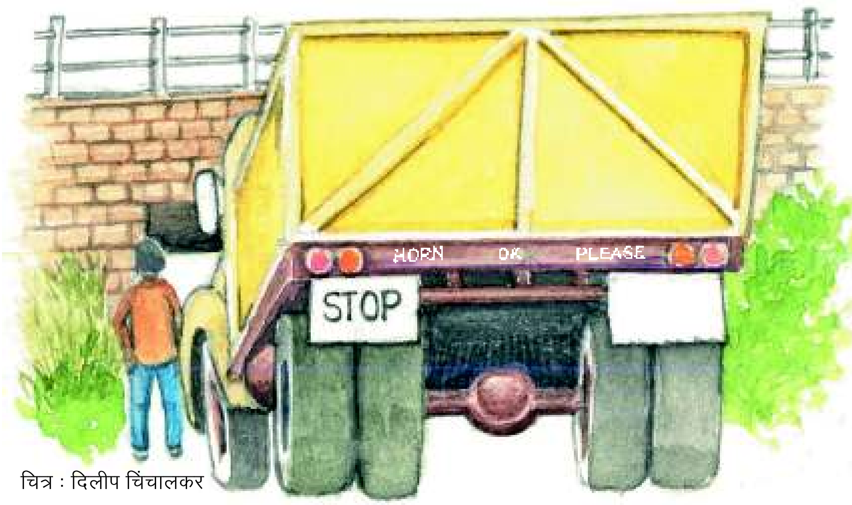

चित्र : दिलीप चिंचालकर

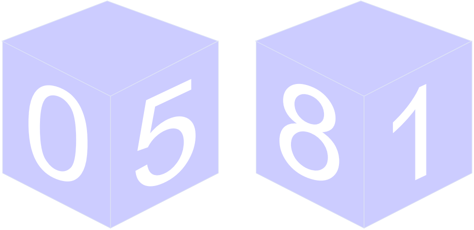

2 तुम्हारे पास सपाट सतहवाले दो घन (cube) हैं। तुम्हें इन दोनों घनों पर इस तरीके से संख्याएँ लिखनी हैं कि तुम इन घनों के जरिए एक महीने की सारी तारीखें दिखा सको। ध्यान रहे कि किसी भी तारीख को दिखाने के लिए दोनों घनों का इस्तेमाल करना ज़रूरी है। यानी कि यदि तुम्हें पाँच तारीख दिखानी हो तो तुम्हें घनों पर 05 दर्शाना होगा। ऐसा तुम कैसे करोगे?

4 साहिल एक बहुत ही मशहूर पर्यटन स्थल पर घूमने गया। वहाँ आए तमाम लोगों से उसने एक ही सवाल पूछा पर हर बार उसे अलग-अलग उत्तर मिला और मज़े की बात है कि सभी का जवाब सही था। तुम्हें क्या लगता है उसने क्या सवाल पूछा होगा?

6 मेरे कस्बे में रेल का एक पुल है जिसकी ऊँचाई थोड़ी कम है। एक दिन मैंने देखा कि एक बड़ा-सा ट्रक उस पुल के ठीक पहले रुका हुआ है। जब मैंने ड्राइवर से पूछा तो उसने बताया कि ट्रक की ऊँचाई पुल के मुँहाने की ऊँचाई से एक इंच ज़्यादा है। और जहाँ मुझे जाना है वहाँ जाने का केवल यही एक रास्ता है। वह आसानी से उस पुल के नीचे से जा सके इसके लिए उसे क्या करना चाहिए। तुम कुछ सुझा सकते हो?

01 02 03 04 05 06 07 08 09 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30

इस माह की पहेली

हाल ही में हमारी कक्षा के सभी बच्चे बस में बैठकर बंगलोर का एक विज्ञान संग्रहालय देखने गए। हमारी बस का नाम पोपोकैटापेटिल था। संग्रहालय जाते समय बस की औसत गति 20 किलोमीटर प्रति घण्टा थी। वापसी में बच्चों ने बस चालक से आग्रह किया कि वो बस इतनी रफ्तार से चलाए कि आने-जाने की मिलाकर औसत रफ्तार 40 किलोमीटर प्रति घण्टा हो जाए। तो बताओ कि वापस आने की रफ्तार कितनी होनी चाहिए?

– मनीष जैन और मानस जैन

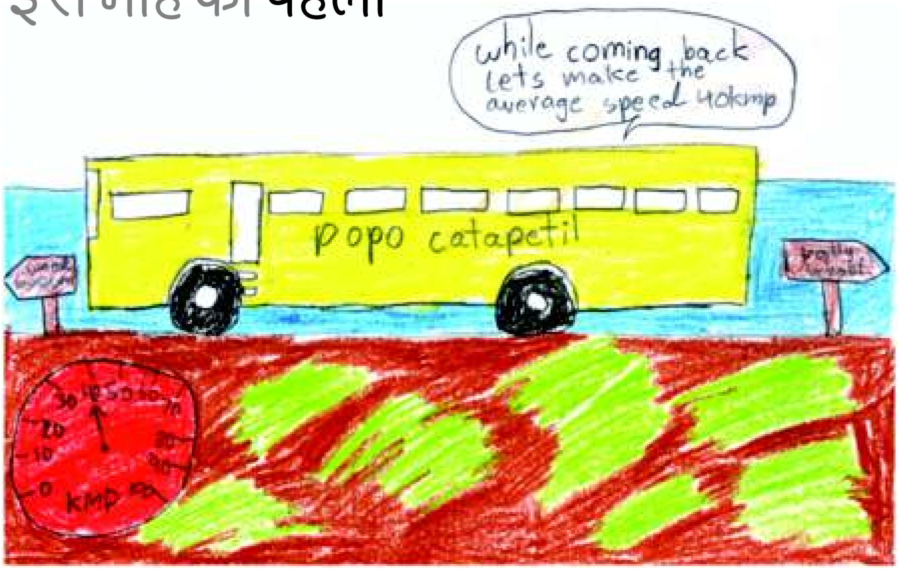

पिछले माह की पहेली

यह कहानी मेरे गाँव हापुड़ की है। करीब दस साल पहले वहाँ पर कीकर का एक घना जंगल था। उस जंगल में 99 प्रतिशत कीकर के पेड़ थे और 1 प्रतिशत पलाश के। एक बिल्डर की निगाह उस जंगल पर थी। वो वहाँ पर कई बहुमंज़िला मकान बनाना चाहता था। उसने हापुड़ की ग्राम सभा में एक प्रस्ताव रखा कि इन मकानों के कारण गाँव के बहुत सारे लोगों को रोज़गार मिलेगा। और वैसे भी हम सिर्फ कीकर के पेड़ काटेंगे। वो भी इतने कि काटने के बाद जंगल में कीकर के 98 प्रतिशत पेड़ बचे रहेंगे।

क्या इसमें बिल्डर की कोई चाल है? क्या ग्राम सभा को यह प्रस्ताव मानना चाहिए? प्रस्ताव के अनुसार जंगल के कितने प्रतिशत पेड़ कटेंगे?

पिछले माह की पहेली का हल

एक प्रतिशत सही उत्तर नहीं है। देखते हैं कैसे –

मान लो कि जंगल में 100 पेड़ थे। यानी 99 पेड़ कीकर के और एक पेड़ पलाश का। यदि एक पेड़ काटा तो पूरे जंगल में 99 पेड़ होंगे – 98 कीकर के और 1 पलाश का। लेकिन 98/99 98 प्रतिशत नहीं होता है।

चलो अब हम पलाश के पेड़ के बारे में सोचते हैं। 100 में से एक पेड़ पलाश का है जो पहले जंगल का एक प्रतिशत था पर पेड़ काटने के बाद अब वही एक पेड़ जंगल का 2 प्रतिशत हो जाएगा। यदि एक पेड़ 2 प्रतिशत हो जाता है तो पूरे जंगल में 100/2 यानी 50 बचेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि जंगल में 100 से घाटकर 50 पेड़ बचे। यानी बिल्डर ने 50 पेड़ काट दिए। चूँकि हमने जंगल में 100 पेड़ माने थे इसका मतलब जंगल बिल्डर के प्रस्ताव के अनुसार 50 प्रतिशत पेड़ कट जाएँगे।

ठीक भी है पलाश 1/50 = 2 प्रतिशत और कीकर 49/50 = 98 प्रतिशत

यह तो हुआ बिल्डर के प्रस्ताव का खुलासा। ज़ाहिर है ग्राम सभा ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया। पर इसके बावजूद कुछ सालों बाद हापुड़ का वो जंगल बरबाद हो ही गया।

गर बत्तख उड़ सकती...

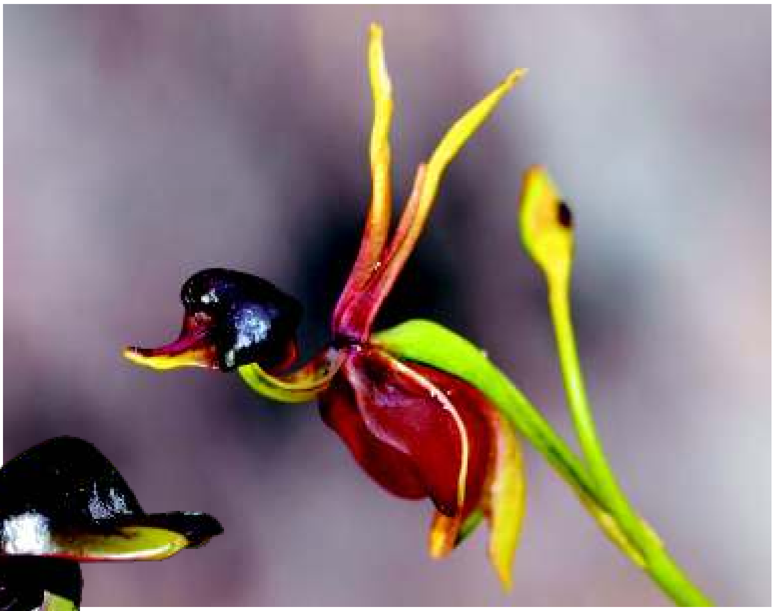

इसके लाल-भूरे से रंग के फूल अमूमन सितम्बर से जनवरी तक खिले रहते हैं।

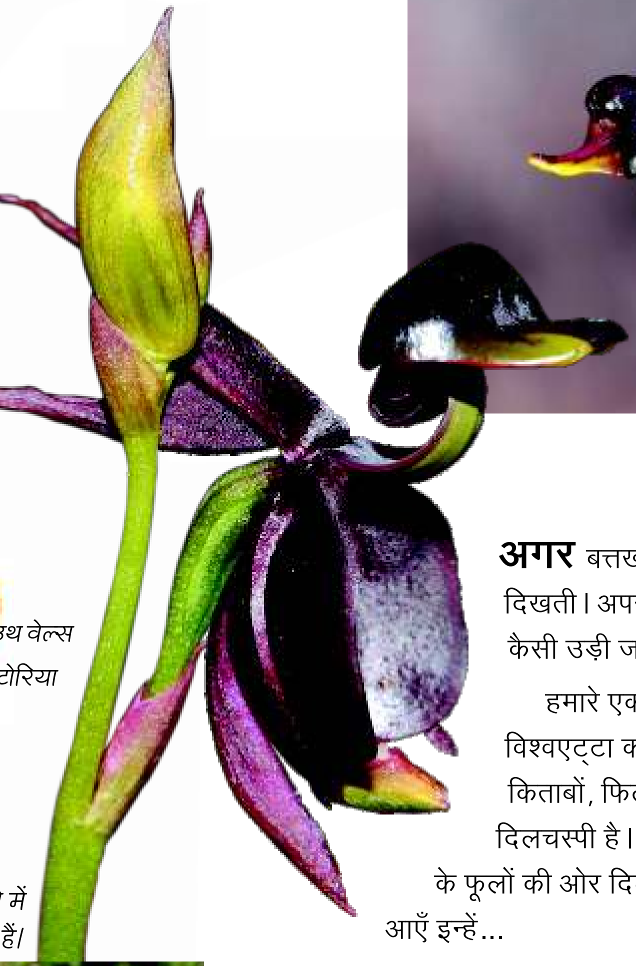

20 इंच ऊँचे इस पौधे में दो से चार फूल उगते हैं।

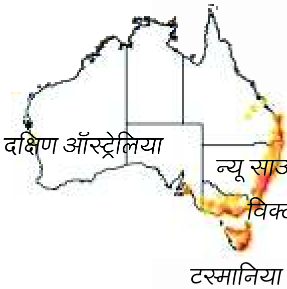

अगर बत्तख हवा में उड़ सकती तो कुछ इस फूल जैसी ही दिखती। अपने पंखों को पीछे ताने, सिर और चोंच उँचाए देखो कैसी उड़ी जा रही है...!

हमारे एक मित्र हैं। प्यार और बहुत आदर के साथ हम इन्हें विश्वएट्टा कहते हैं। कालीकट में रहते हैं। हिन्दी फिल्मी गानों, किताबों, फिल्मों के बड़े शौकीन हैं। पेड़-पौधों में उनकी बड़ी दिलचस्पी है। कुछ दिन पहले उन्होंने हमारा ध्यान विचित्र आकार के फूलों की ओर दिलाया। तो हमने सोचा क्यों ना तुम्हारे ध्यान में भी ले आएँ इन्हें...

इसी कड़ी का पहला फूल है यह – पूर्व और दक्षिण ऑस्ट्रेलिया में उगनेवाला सैलीना मेजर (*Caleana major* या Flying Duck)

इस फूल की खासियत है इसका बत्तख की चोंच जैसा हिस्सा। फूल के परागण में इसकी बड़ी खास भूमिका है। एक कीड़ा है – सॉफ्लाई जो इस "चोंच" की ओर खिंचा आता है और इस पर बैठ जाता है। चोंच पर परागकण होते हैं जो इस पर चिपक जाते हैं। अगर भूलचूक से वो फूल के किसी और हिस्से पर बैठ जाता है तो उसके भार से बत्तख की चोंच उस पर झुक आती है। कीड़ा उस में इस तरह फँस जाता है कि बाहर निकलने का उसके पास एक ही रास्ता बचता है। और वो है इसके परागकणों से होकर निकलना। उसके जाते ही चोंच फिर अपनी जगह आ विराजती है अगले सॉफ्लाई के इन्तज़ार में।

और अगर तुम्हारी बहुत इच्छा है इसे अपने बगीचे में देखने की तो तुम्हें निराश होना पड़ेगा। वो इसलिए कि इस फूल का पौधा जंगल में जहाँ उगता है वहाँ इसकी जड़ों का एक खास तरह की फफूँद से सहसम्बन्ध है। इस फफूँद की वजह से यह संक्रमण से बचा रहता है। और यह फफूँद ऑस्ट्रेलिया के एक खास हिस्से में ही मिलती है।

हरे लगते हैं क्यों ये पेड़ बागों में
मेरे हाथों के तोते उड़ गए थे

हवा सीटी बजाती है या पत्ते
या तोते छुप गए हैं पेड़ में जाके।

बोलीरंगोली

भोले बच्चो,

बंगाल के एक बहुत बड़े कवि थे, सुकुमार रे!

कमाल की “फैन्टेसी” कविता लिखते थे। जिसमें बच्चों के लिए एक मानी होते थे और बड़ों के लिए एक और....

उन्हीं से इन्सपायर्ड होकर एक कविता आप सब को सुना रहा हूँ। सुनोगे तो मज़ा आएगा। सोचेंगे तो एक और मज़ा आएगा। और अगर पेंटिंग बना लो तो समझो एक तीसरा मज़ा होगा!

- गुलज़ार

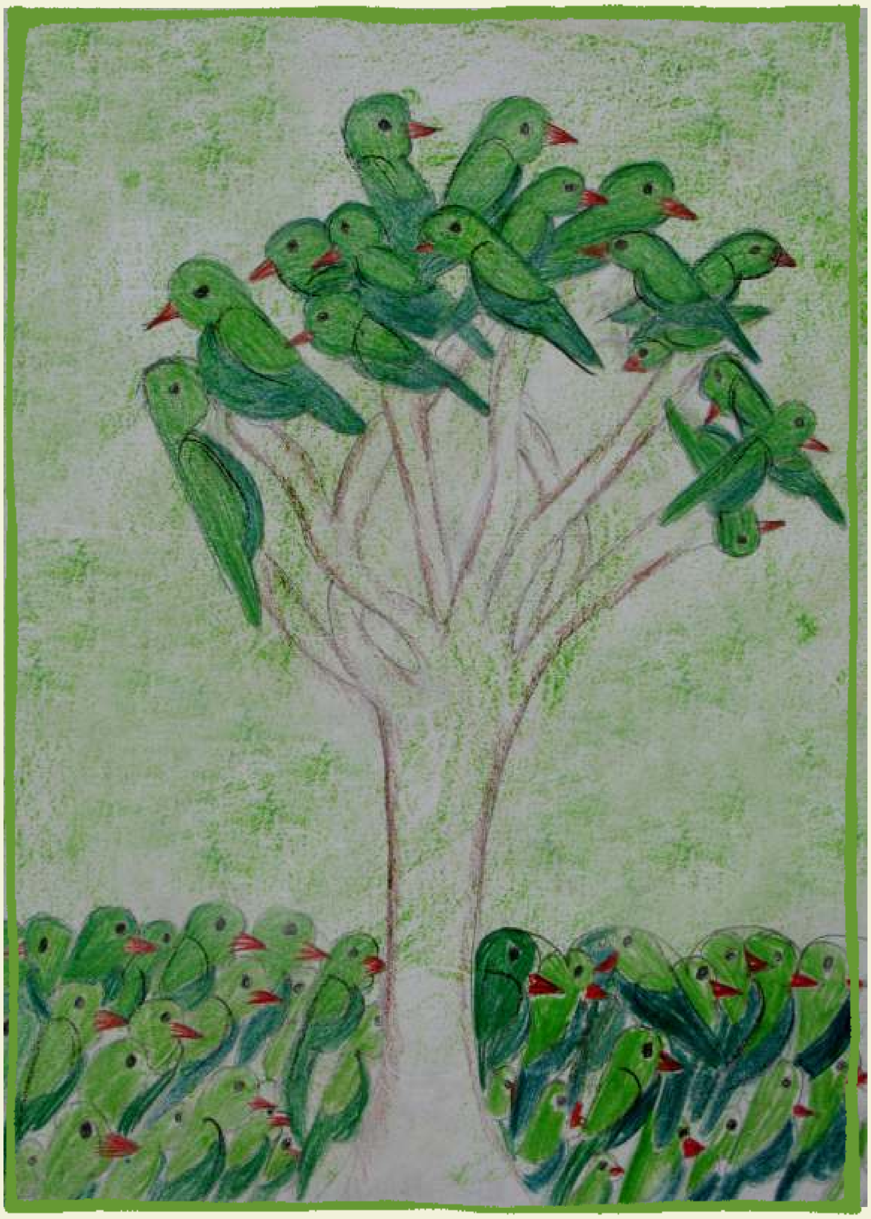

शुभांगी गोस्वामी, छठी, सनसिटी, गुड़गाँव

कानों की इक नगरी देखी जिसमें सारे काने थे
एक तरफ से अहमक सारे एक तरफ से स्याने थे

कानों की उस नगरी के सब रीत-रिवाज़ अलहदा थे
रोग अलहदा बस्ती में थे और इलाज़ अलहदा थे

दरिया पुल पर चलता था पानी में रेलें चलती थीं
लँगूरों की दुम पर अँगूरों की बेलें फलती थीं

चाँदनी रात की छतरी लेकर बाहर जाया करते थे
ओस गिरे तो कहते हैं वहाँ सर फट जाया करते थे

घण्टी बाँध के चूहे जब बिल्ली से दौड़ लगाते थे
खाली पेट पे हाथ बजाकर सब कव्वाली गाते थे

झूठा है जो अन्धी नगरी काना राजा कहता है
जाकर देखो कानी नगरी अन्धा राजा रहता है

बोलीरंगोली

इस कविता की पसन्दीदा पंक्ति पर चित्र बनाओ या पूरी की पूरी कविता ही चित्र में समेट लो।

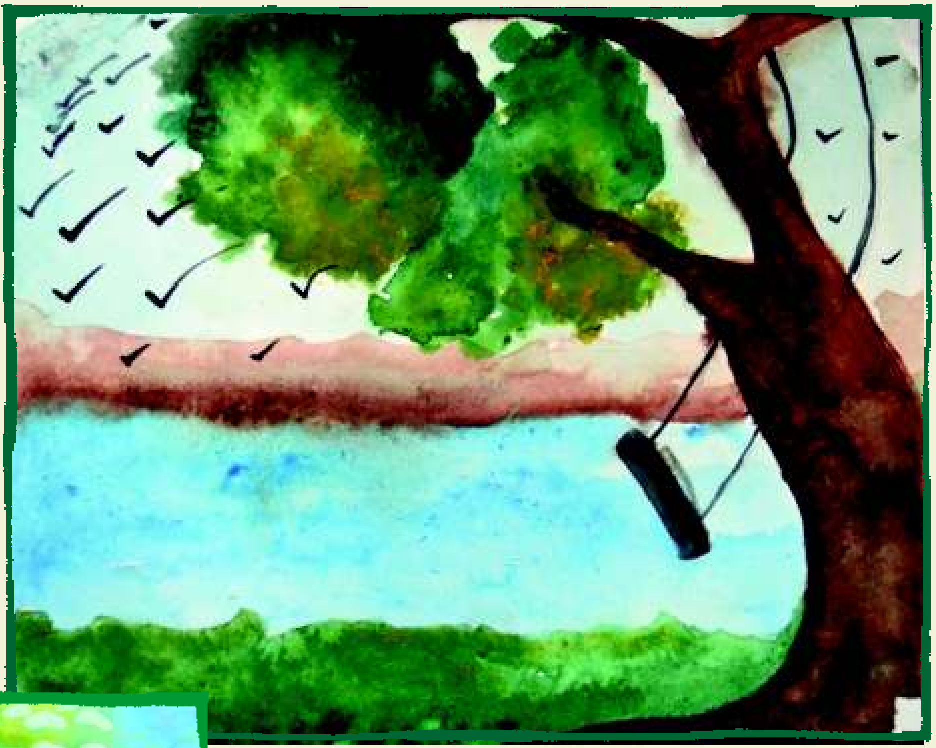

कीर्ति साहू, ग्यारहवीं,
आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

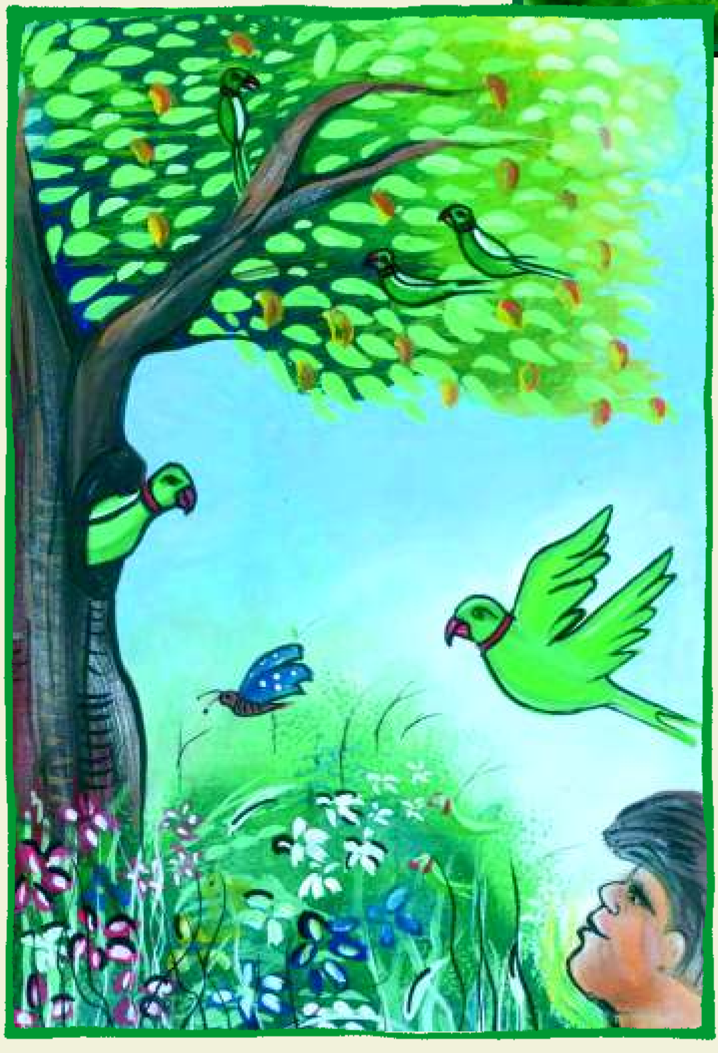

इन्द्रजीत, नेशनल बाल भवन, दिल्ली

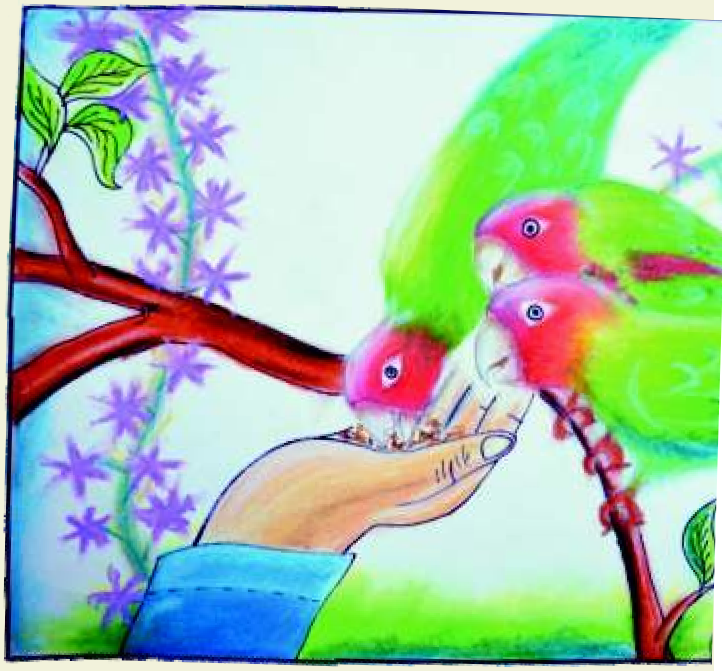

कनुप्रिया व्यास, आठवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

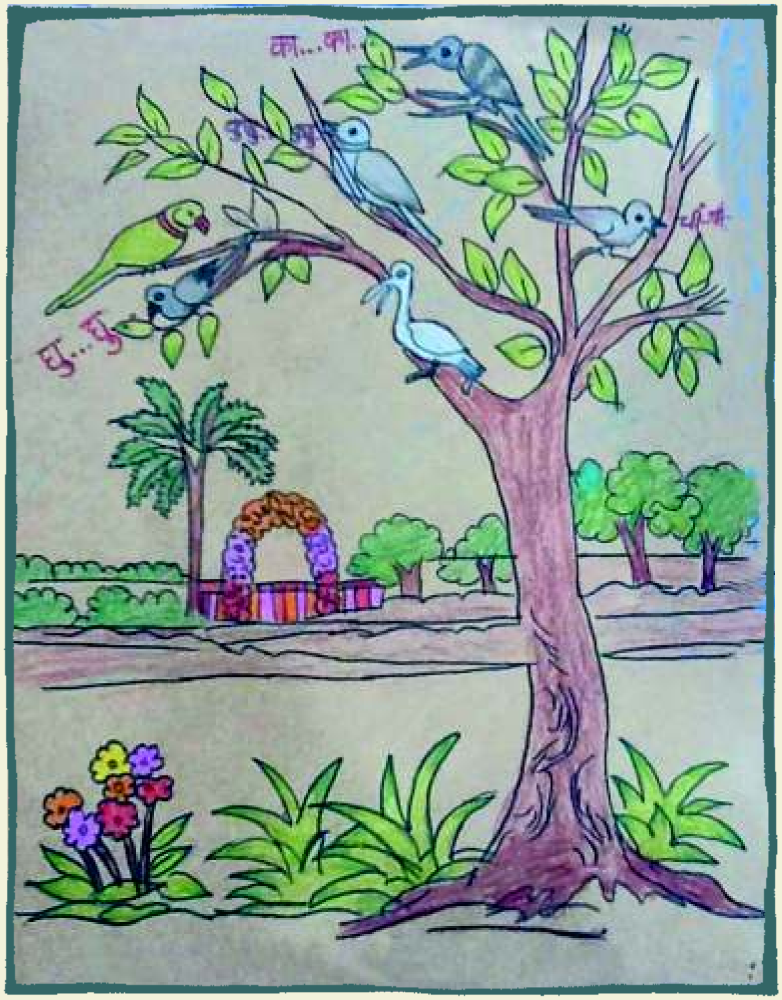

आस्था शैलेश पटेल, डीपीएस, तापी

हरे लगते हैं क्यों ये पेड़ बागों में
मेरे हाथों के तोते उड़ गए थे

हवा सीटी बजाती है या पत्ते
या तोते छुप गए हैं पेड़ में जाके।

पता है -
चकमक,
एकलव्य,
ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16
(फोन - 09425010115)
चाहो तो ईमेल कर दो chakmak@eklavya.in

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 14 अगस्त तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

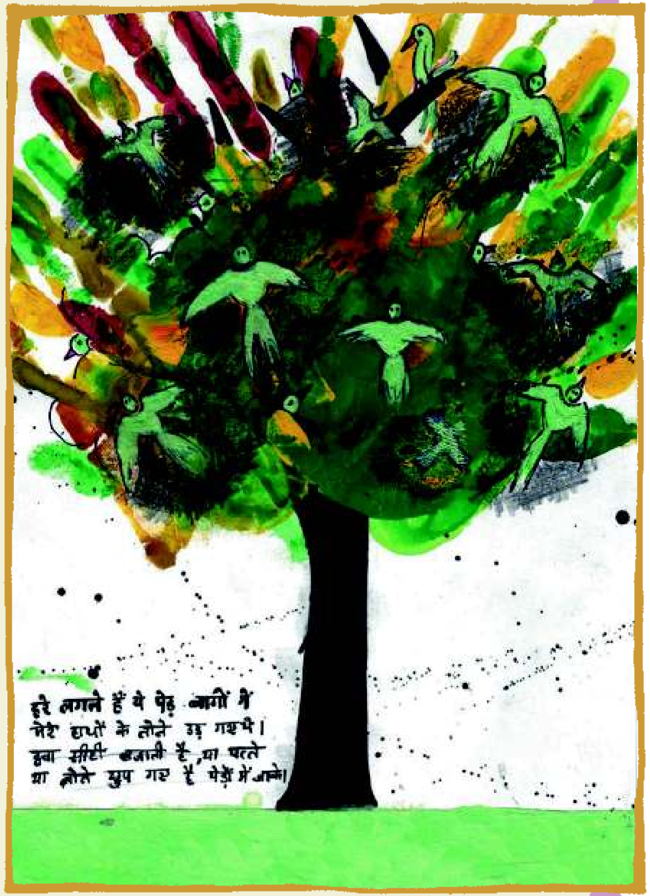
हरे लगते हैं ये पेड़ बागों में
मेरे हाथों के तोते उड़ गए थे।
हवा सीटी बजाती है, या पत्ते
या तोते छुप गए हैं पेड़ों में जाके।

अग्रिम जिन्दल, आठवीं, डीपीएस, कोयम्बटूर

बोलीरंगोली

हरे लगते हैं क्यों ये पेड़ बागों में
मेरे हाथों के तोते उड़ गए थे

हवा सीटी बजाती है या पत्ते
या तोते छुप गए हैं पेड़ में जाके।

सुवर्णा, पाँचवीं, प्रोत्साहन केन्द्र, पूना

नंदिनी, छठी, डीपीएस, कोयम्बटूर

हरिहरन, बारह साल, मरुदम स्कूल, चैन्ने

पार्थ, दस वर्ष, आनन्द निकेतन डैमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल

आँगनवाड़ी में पहले शिक्षा
उसके बाद पहली कक्षा

जीवन के प्रथम 6 वर्ष बच्चे के संपूर्ण जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन वर्षों में विकास की गति अन्य अवस्थाओं की तुलना में तीव्र होती है। इसलिए आपके बच्चे के लिए शालापूर्व अनौपचारिक शिक्षा जरुरी है, इससे –

- स्कूली शिक्षा के लिए बच्चों को तैयारी में मदद मिलती है।
- आँगनवाड़ी केन्द्र में बच्चों के विकास की नियमित निगरानी की जाती है।
- नियमित स्वास्थ्य परीक्षण तथा पोषण आहार के कारण वे स्वस्थ्य रहते है।
- बच्चों का बौद्धिक, शारीरिक व भाषाई विकास होता है।

तो फिर अपने बच्चे का नाम अपने पास के आँगनवाड़ी केन्द्र में दर्ज कराईये

आँगनवाड़ी चलो अभियान

15 से 22 जुलाई 2015

– अभियान की मुख्य गतिविधियाँ –

पहला दिन- वृक्षारोपण एवं खेलकूद प्रतियोगिता
दूसरा दिन- आंगनवाड़ी केन्द्रो की सफाई
तीसरा दिन- चित्रकला/ पोस्टर प्रतियोगिता
चौथा दिन- श्रेष्ठ बालक–बालिका
पांचवां दिन- दादी –नानी संवाद
छटवां दिन- मंगल दिवस
सातवां दिन- बाल सभा का आयोजन

ऐसे 20 बच्चें जिनकी आंगनवाड़ी केन्द्रों में विगत तीन माह में उपस्थिति 0 से 5 दिन प्रति माह रही है, अभियान के दौरान किन्ही चार दिनों में प्रतिदिन 5 बच्चों के परिवार से मिलकर उन्हें आंगनवाड़ी केन्द्रों की सेवाऐं नियमित लेने के लिए प्रेरित किया जावेगा।

आँगनवाड़ी केन्द्र की सेवाओं/सुविधाओं को उन्नत करने, बच्चों के पोषण स्तर में सुधार लाने में आप भी योगदान करिये।

स्वस्थ बचपन बेहतर भविष्य
राह दिखाती आँगनवाड़ी

आँगनवाड़ी चलो

संचालनालय एकीकृत बाल विकास सेवा
महिला एवं बाल विकास विभाग, मध्यप्रदेश शासन

D 77273 दिनांक 13-7-2015

अब तक छब्बीस

विवेक सोले

30 जून 1972 को पहला लीप सेकंड जोड़ा गया। तब से अब तक 26 लीप सेकंड जोड़े जा चुके हैं।

इंसान ने समय की गणना करना तो बहुत पहले ही सीख लिया था। ज़मीन पर कोई ऊँची चीज़ गाकर सूरज की परछाई से समय का अन्दाज़ लगाने के प्रमाण 3500 ईसा पूर्व के आसपास के मिलते हैं। 17वीं शताब्दी तक इसी तरह की सूर्य घड़ी प्रचलित थी। शुरू में सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच के अन्तराल को 12 हिस्सों में बाँटकर एक घण्टा माना जाता था। ठण्ड और गर्मी में दिन की लम्बाई छोटी-बड़ी होने से 12 हिस्सों में बँटा घण्टा छोटा या बड़ा हो जाता था। पर इसका कोई भी असर लोगों की दिनचर्या पर नहीं होता। इसके बाद गिरती हुई पानी की बूँदों (इसमें घड़े से टपकती बूँदों से समय गिना जाता था। घड़े के खाली होने में लगनेवाले समय को समय की एक इकाई माना गया।) और बाद में पेंडुलम और स्प्रिंग ने घड़ी को और सटीक बनाया। लेकिन जब हमने समुद्री यात्राएँ शुरू कीं तो इससे भी बेहतर और आसानी से इधर-उधर ले जा सकनेवाली घड़ी बनाने की ज़रूरत महसूस हुई। सुदूर समुद्र में अक्षांश (latitude) का पता तो आसमान में सूर्य की स्थिति देखकर मिल जाता पर देशान्तर (longitude) जानने के लिए बहुत ही सटीक घड़ी की ज़रूरत थी। ब्रिटिश सरकार ने 1707 में सही घड़ी बनाने के लिए 20000 पौंड का इनाम घोषित किया जो उस समय (और काफी लोगों केलिए आज भी) एक बहुत बड़ी राशि थी।

सेकंड की परिभाषा *- एक सेकंड वह अन्तराल है जो सीज़ियम 133 परमाणु के निम्नतम ऊर्जास्तर के दो अतिसूक्ष्म स्तरों के मध्य संक्रमण के तदनुरूपी विकिरण के 9,192,631,770 आवर्त काल बराबर है। (है न दिलचस्प परिभाषा!)*

समय की कहानी में अगली बड़ी छलाँग 1960 में क्वाट्र्ज़ के कारण लगी। घड़ियों में पेंडुलम और स्प्रिंग की जगह क्वाट्र्ज़ क्रिस्टल ने ले ली जो एक सेकंड में 3200 बार कम्पन (vibrations) करता था। आज भी ज़्यादातर घड़ियों में क्वाट्र्ज़ क्रिस्टल ही काम में लिया जाता है। इस पर आधारित घड़ियाँ महीने में कुछ ही सेकंड आगे-पीछे होती हैं।

आज के युग में कुछ सेकंड का फर्क भी कम नहीं होता है। शेयर बाज़ार में तो कुछ सेकंड की देरी में करोड़ों का हेरफेर हो सकता है। अन्तरिक्ष में रॉकेट और सैटेलाइट अपना रास्ता भटक सकते हैं। GPS (ग्लोबल पोज़ीशनिंग सिस्टम) भी गलत स्थिति बताएगा।

लेकिन अब हमारे पास परमाणु घड़ी है। Ceasium 133 परमाणु का सबसे बाहरी इलैक्ट्रॉन अकेला होता है जो सटीक गति से कम्पन करता है। 9,192,631,770 बार कम्पन करने के समय को एक सेकंड माना गया है। इस पर आधारित घड़ी को एटॉमिक क्लॉक या परमाणु घड़ी कहते हैं। समय के मापन का यह अब तक का सबसे सटीक साधन है। अब हम समय की

हैरिसन H4 क्रोनोमीटर

सीजियम परमाणु घड़ी

इकाई “सेकंड” को प्रकृति के एक मौलिक गुण के आधार पर परिभाषित कर सकते हैं। यह घड़ी पृथ्वी के घूमने पर आधारित घड़ी से भी बेहतर है।

परमाणु घड़ी से ही हमें पता चला है कि पृथ्वी के घूमने की गति कुछ मिलीसेकंड धीमी हो रही है। इसके पीछे एक मुख्य कारण है हमारा चन्द्रमा। इसी वजह से समुद्र में ज्वार-भाटा आते हैं। पानी के घर्षण के कारण पृथ्वी को धीमा करते हुए चन्द्रमा भी हमसे हर साल लगभग 4 सेंटीमीटर दूर होता जा रहा है। दूसरे कारण जैसे ध्रुवीय बर्फ का जमना-पिघलना, भूकम्प, बाँध, ज्वालामुखी आदि से भी पृथ्वी के घूमने की गति में मामूली परिवर्तन आता है।

तो इस तथ्य को जान लेने के बाद इसे ठीक करने के तीन रास्ते हैं-

1. हम इसकी तरफ ध्यान ही न दें।

2. एक सेकंड समय की परिभाषा को ही बदल दें जिससे दिन 86,400 सेकंड का ही बना रहे।

3. कुछ-कुछ सालों बाद दिन में एक लीप सेकंड जोड़कर इसकी भरपाई की जाए।

अगर हम 1 नम्बर के विकल्प को चुनते हैं तो हमारी घड़ी और सूर्य की स्थिति का तालमेल ठीक से नहीं बैठेगा। अगर हम दूसरा विकल्प चुनते हैं तो सेकंड की आधुनिक परिभाषा पर आधारित सारी गणनाएँ गड़बड़ा जाएँगी।

इसलिए 1972 में यह निर्णय लिया गया कि 30 जून या 31 दिसम्बर को दिन में एक सेकंड जोड़कर इसे ठीक किया जाए। 30 जून 2015 ऐसा ही छब्बीसवाँ लीप सेकंड जोड़ा गया। जीएमटी (ग्रीनविच मीन टाइम/यूटीसी - कोऑर्डिनेटिड यूनिवर्सल टाइम) के अनुसार इस दिन का आखरी मिनट 61 सेकंड का था। 30 जून 1972 को पहला लीप सेकंड जोड़ा गया। तब से अब तक 26 लीप सेकंड जोड़े जा चुके हैं। 1972 और 2012 के बीच लगभग हर 18 महीने बाद एक लीप सेकंड जोड़ा गया लेकिन 1999 से 2005 तक एक भी लीप सेकंड जोड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ी। कब कितने लीप सेकंड जोड़ना है यह पहले से तय नहीं है। क्योंकि पृथ्वी का दिन धीमा पड़ने का भी कोई निश्चित तंत्र नहीं है। ऐसा करने के छह महीने पहले ही यह घोषणा की जाती है। इन सब से कुछ तकनीकी परेशानियाँ भी झेलनी पड़ती हैं। कम्प्यूटर की घड़ियों का तालमेल गड़बड़ा जाता है। कई सॉफ्टवेयरों को तुरन्त अपडेट करना पड़ता है। लीप सेकंड के बारे में अभी सब वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। हो सकता है कि कुछ सालों बाद लीप सेकंड की व्यवस्था की बजाय किसी और नियम पर सारे वैज्ञानिक एकमत हो जाएँ।

लेकिन फिर भी इस जून में हमें तो अपना एक अतिरिक्त सेकंड मिल गया। इस एक सेकंड को तुमने कैसे खर्च किया?

जल घड़ी जिसमें समय नापने के लिए घड़े में से टपकती बूँदों से समय गिना जाता था। घड़े के खाली होने में लगनेवाले समय को समय की एक इकाई माना गया। विभिन्न सभ्यताओं में इनका उपयोग प्राचीन काल में हुआ था।

एलिस इन वंडरलैंड के खरगोश की हाथ-घड़ी महीने का दिन बताती थी

मिले जुले पन्ने

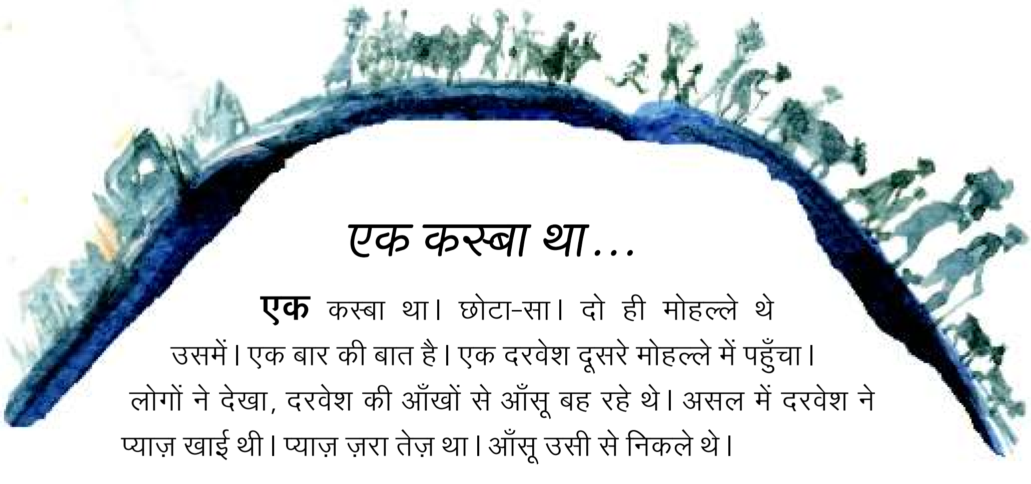

एक कस्बा था...

एक कस्बा था। छोटा-सा। दो ही मोहल्ले थे उसमें। एक बार की बात है। एक दरवेश दूसरे मोहल्ले में पहुँचा। लोगों ने देखा, दरवेश की आँखों से आँसू बह रहे थे। असल में दरवेश ने प्याज़ खाई थी। प्याज़ ज़रा तेज़ था। आँसू उसी से निकले थे।

“ज़रूर उस मोहल्ले में किसी की मौत हुई है।” किसी ने कहा। सुननेवाले ने कुछ देर बाद किसी और से कहा, “उस मोहल्ले में कुछ हुआ है। लोग मर रहे हैं, कुछ रोते हुए इधर आ रहे हैं।”

धीरे-धीरे बात फैल गई। उधर वाले मोहल्ले में कोई महामारी फैल गई है। लोग मर रहे हैं। मोहल्ला छोड़कर भाग रहे हैं। समझदारों ने कहा, महामारी है तो फैलेगी ही। इधर भी आएगी। इस मोहल्ले में भी घबराहट फैल गई। किसी ने कहा, “महामारी आ ही पहुँचे इससे पहले भाग लेना चाहिए।” फिर क्या देर लगती? इस मोहल्ले के लोग माल-असबाब ऊँटों, गधों और गाड़ियों पर लाद कर चलने लगे। देखते-देखते मोहल्ला खाली हो गया।

इसी दौरान उस मोहल्ले का एक आदमी इस मोहल्ले में आया हुआ था। उसे पता चला कि कोई महामारी आ रही है। उसी से बचने सब भाग रहे हैं। वह भागा-भागा अपने मोहल्ले में पहुँचा और वहाँ खबर दी, “कस्बे में महामारी फैल चुकी है। पड़ोस का पूरा मोहल्ला खाली हो चुका है। इससे पहले कि महामारी हमारे मोहल्ले तक पहुँचे, हम सबको दूर भाग जाना चाहिए।”

यह घटना हज़ारों साल पुरानी है।

उस वीरान कस्बे के दोनों ओर दो शक्तिशाली सभ्य देश मौजूद हैं। दोनों की अपनी-अपनी संस्कृतियाँ हैं। अपना-अपना इतिहास है। धर्मग्रन्थ हैं। दोनों के इतिहास में एक बात समान है। दोनों मानते हैं कि उनके पुरखे किसी दैवी-आपदा के सताए जाने पर अपनी भूमि छोड़कर यहाँ आए थे। और उन्होंने इस महान सभ्यता की नींव रखी थी।

छोटा-सा कस्बा था। दो ही मोहल्ले थे। एक दरवेश प्याज़ खाकर एक दूसरे मोहल्ले चला गया था।

पैन नहीं छुरी

किसान एक व्यापारी के पास गया। इसी बनिए से यह किसान सूद पर कर्ज़ लिया करता था। तभी बनिए के कान में अटका पैन नीचे गिर गया। किसान ने वह पैन उठाया और उसे बनिए को देते हुए बोला, “लीजिए, अपनी छुरी लीजिए।” बनिया बोला, “नहीं भाई, छुरी नहीं ये तो पैन है।” किसान बोला, “सरकार, पैन होगा आपके लिए, मेरे गले को तो यह छुरी की तरह ही रेतती है।”

(साभार -द कन्वर्सेशन विद कोमल कोठारी)

सेठों में सेठ छोटू सेठ
बाकी सारे उसके
फोटू स्टेट

(जयपुर जा रही एक बस से - गोविन्द शर्मा)

खबर

मुल्ला नसरुद्दीन चायखाने में बैठा था। एक आदमी ने आकर पूछा, "मुल्ला, उधर कोने में बैठा एक आदमी सुबह से सुबक-सुबककर रो रहा है। तुम्हें कुछ मालूम है?"

"हाँ, मैंने ही उसके गाँव से आकर उसे बताया था कि अपने ऊँटों की खातिर सर्दियों के लिए बचाकर रखा हुआ उसका सारा चारा आग की भेंट चढ़ चुका है।" मुल्ला ने ठण्डे लहज़े में कहा। "च्च, च्च!" आदमी के मुँह से निकला, "बुरी खबर सुनाना भी एक बड़ा बुरा काम है।" "उसे एक अच्छी खबर भी सुनानी है।" मुल्ला ने उसी ठण्डाई से कहा। "बताओ, वो अच्छी खबर क्या है?" आदमी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"यह कि उसके सारे के सारे ऊँट भी प्लेग का शिकार होकर मारे जा चुके हैं। इसलिए सर्दियों में उसे चारे की कोई ज़रूरत ही नहीं रह गई है।"

साभारः सूफी कहानियाँ, मालचन्द तिवाड़ी

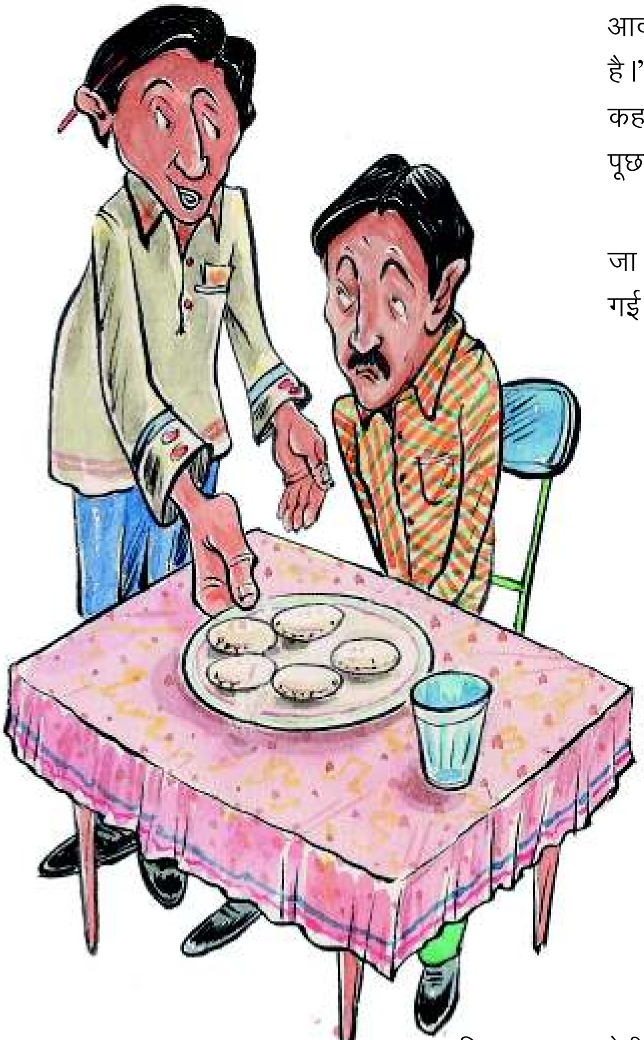

चित्रः प्रशान्त सोनी

रात गहरी हो चली थी। रेस्त्राँ बन्द हो गए थे। एक खुला दिखा। वह अदेर वहाँ पहुँचा। इडली खाने का मन था। पर उसे समझ में आ गया था कि वह देर से पहुँचा है। "रेस्त्राँ बन्द हो गया है।" एक वेटर ने कहा। "मुझे तो बस इडली दे दीजिए, साँभर छोड़ दीजिए।" उसने फटाक से कहा। वेटर मुस्कराया। फिर बोला, "देखिए साँभर तो है नहीं। ऐसा करता हूँ चटनी छोड़कर इडली दे देता हूँ।"

- जस्टिन जोसेफ

सिनेमा क्या है?

एक जापानी उपन्यासकार शिगा नाओया ने एक दफा मुझे एक निबन्ध पढ़वाया। जो उसके पोते ने लिखा था। लेख का नाम था –"मेरा कुत्ता"। उसमें उसने लिखा था कि "मेरे कुत्ते की शक्ल भालू से मिलती-जुलती है; वो लोमड़ी जैसा भी लगता है और बिज्जू से भी उसकी शक्ल मिलती है....।" इस तरह वो एक-एक कर कुत्ते की खासियतें गिनाता रहा और हरेक की किसी और जीव से तुलना करता रहा। इससे एक पूरे जीव-जगत की सूची तैयार हो गई। खैर, निबन्ध खत्म कुछ ऐसे होता है कि "चूँकि वो एक कुत्ता है इसलिए सबसे ज़्यादा वो कुत्ते जैसा लगता है।" मुझे याद है इसे सुनकर मैं ज़ोर-से हँसा था। पर इसमें एक बात भी छिपी थी। सच ही है कि सिनेमा कितनी सारी दूसरी कलाओं से मिलता-जुलता है। इसमें साहित्य, रंगमंच, दर्शन, पेंटिंग, शिल्प, संगीत सभी के तत्व हैं। पर कुल मिलाकर देखें तो सिनेमा बस सिनेमा ही है।

(साभार - अकीरा कुरोसावा की जीवनी से)

एक-एक बूँद से क्या मस्ती आती थी!

नूरेनिशाँ

मच्छरों से लड़ते-लड़ाते बिजली की गैरहाज़िरी में पसीना चुआते-पोंछते कल रात जाने कब बड़ी मुश्किल से नींद मिली! और जल्दी ही खो भी गई। पर इसका कोई अफसोस नहीं। बल्कि कानों में पड़पड़-तड़तड़ की आवाज़ पड़ते ही दिल खुश हो गया। पानी बरसने लगा था। साढ़े चार बज रहे थे और मैं उजाला फैलने का इन्तज़ार कर रही थी। पर ठण्डी हवा के झोंकों ने कब मुझे फिर से सुला दिया यह तब पता चला, जब अम्मा ने मुझे पुकारा – उठ जा, छोटी! देख, मौसम कितना अच्छा हो गया है!

मैं उठते ही बाहर भागी। घर के सामने के आम के पेड़ों के नीचे खूब पानी भर गया था। कल तक गरमी से बेहाल पक्षी आज खुश होकर गा रहे थे। मेरी और पड़ोसियों की बत्तखें बारिश के पानी में तैर रही थीं। मेरे बछड़े ने मुझे देखा तो रम्भाने लगा। लगा जैसे वो कह रहा हो कि मैं तो खूब नहाया बरसात में। तुम कहाँ थीं अभी तक?

रेलवे लाइन के पार पानी भरे खेतों में ट्रैक्टर दौड़ रहा था। पता नहीं कहाँ से आकर बगुलों के झुण्ड खेतों के इर्द-गिर्द मँडराने लगे थे। धान लगानेवाली औरतें खेतों को अपने घूँघट से झाँककर देख रही थीं। कुछ किसान कन्धे पर फावड़ा रखकर जा रहे थे। और कुछ लड़कियाँ अपनी चुन्नियों को सम्भालती हुई खेतों की ओर जा रही थीं।

दोपहर को जब अम्मा चारा लेकर लौटी तो उसने बताया कि औरतें तैयार हो गई हैं। कल से हम भी धान लगाने जाएँगे।

अगले दिन सुबह-सुबह हम सब खेतों की ओर चल दिए। सबसे पहले उस खेत पर पहुँचे जहाँ पौध बोई गई थी। हमने वहाँ की पौध उखाड़नी शुरू कर दी। पौध उखाड़ते-उखाड़ते दोपहर हो गई। अम्मा और मैंने खाना खाया फिर कुछ देर आराम किया। लगभग तीन बजे हमने फिर से पौध उखाड़नी शुरू कर दी। जब तक शाम के पाँच-छह न बज गए हम पौध उखाड़ते रहे। बीच-बीच में मैं सबको पानी लाकर पिलाती रही।

धान के फूलते ही...

विनोद कुमार शुक्ल

धान के फूलते ही
धान की महक फैल गई
खेतों में अभी भी पानी भरा हुआ है
धान की जड़ों के पास
छोटी-छोटी मछलियाँ
इस तरह घूमती फिरती हैं
जैसे धान की जड़ों की रक्षा करती हैं
खेत में किसान के पैर जहाँ धँसे थे
वहाँ पैर के निशान का गड्ढा है
इस गड्ढे के साफ पारदर्शी जल में
मछलियों का झुण्ड तैरता है
जैसे किसान के पैरों के निशान पर
पहरा देता है
हवा में धान के खेत
और जल-माटी की जो महक है
उस महक में मछली की भी महक
मछली की तरह तैरती है
दूर तक फैली इस महक ने
किसी मछुवारे को आदतन ललचाया हो
कि वह जाल की महक हवा में फेंककर
तैरती मछली की महक को फाँस ले -
इस हवा में
खेत की अच्छी फसल का बराबरी का
असर है
कि किसान कन्धे पर हल लेकर आते-जाते
हवा को भी जोत गया था
अब जो पकी धान
हवा में भी महक रही है।

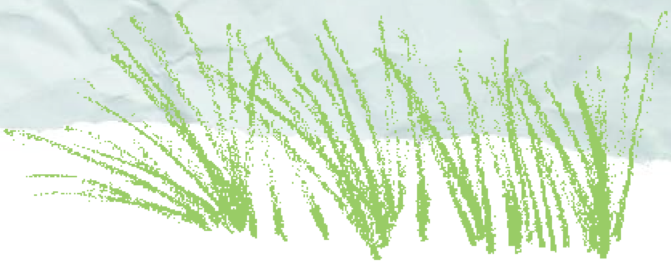

हम जिस किसान के खेत की पौध उखाड़ रहे थे, उसके घर में एक जामुन का पेड़ था। मैं नीचे से ही कूद-कूदकर उस पेड़ के जामुन तोड़ती थी। कुछ डालें काफी नीचे तक लटक आती थीं। मैं सबको जामुन देती – कुछ खट्टे, कुछ मीठे, कुछ बखटे जामुन।

दूसरे दिन अम्मा ने कुछ और औरतों को धान लगाने के लिए बुलाया। जब कभी मैं पौध लगवाती तो सबको बहुत मज़े दिलाती थी। जब उनके पीछे के पौध खतम हो जाते तो उनके पास पानी में पौध को खूब तेज़ फेंककर देती थी।

औरतें कहतीं, “अरे छुटकी, क्या कर रही है? धीरे-से फेंक। देख, हमारे कपड़े भीग गए। तूने तो हमें मिट्‌टी से सना दिया।” वो नाराज़ भी हो जातीं। मुझे दो-चार बातें भी सुना देतीं। पर मुझे गुस्सा नहीं आता। बल्कि मन ही मन में खूब मज़ा आता। मैं उनका गुस्सा हँसी-मज़ाक में टाल देती।

“ठैर जा अभी तुझे पानी में लोट लगवाती हूँ!” कहती हुई गाँव की एक मौसी मुझे पानी भरे खेत में दूर तक दौड़ा देती। पर मैं उसके हाथ न आती और मुँह बनाकर उसे चिढ़ाते हुए एक मुट्‌ठा धान उसकी ओर उछाल देती। उसे लपककर वह वहीं शान्त हो जाती और फिर से धान रोपने लगती।

किसी दिन मैं नहीं जाती तो अगले दिन सभी कहतीं, “छुटकी तू नहीं आई तो पूरे दिन अच्छा नहीं लगा।” क्योंकि मैं पौध तो ज़्यादातर नहीं लगाती थी। इधर-उधर भागती-कूदती रहती थी। अधिकतर तो पानी, जामुन, अमरूद, खाना लाना ही मेरे ज़िम्मे रहता।

दोपहर बाद सब अपनी-अपनी माँगें उतार देते थे। और मेड़ पर बैठकर आराम करते। कुछ देर रुककर पानी पीते। घर से लाया खाना, जामुन-आम खाते।

सब बैठे होते तब मैं पौध ला-लाकर खेत में फैला आती। कुछ देर बैठने के बाद सब अपनी-अपनी माँग लेकर चलने लगते थे। अब पानी पीने और बैठने की मेरी बारी होती। मैं उन्हें झुके हुए धान लगाते देखती और सोचती कि रात को इन सबकी कमर और पैर खूब दुखेंगे।

बीच-बीच में मैं किसी-किसी बात पर खूब मज़ाक भी करती रहती थी। उन्हें फिल्मी गाने और अपनी किताब की कविताएँ सुनाती। साहिर लुधियानवी का एक गाना मेरी कक्षा छह की हिन्दी की किताब में था – “साथी हाथ बढ़ाना, एक अकेला थक जाए तो मिलकर बोझ उठाना।”

शाम को सभी अपने-अपने जानवरों के लिए चारा काटतीं और अपने-अपने घरों की ओर चल देती थीं। मैं अम्मा का चारा अपनी साइकिल पर बाँधकर सड़क पर सभी ओर “निघा” डालती धीरे-धीरे चलती। मैं

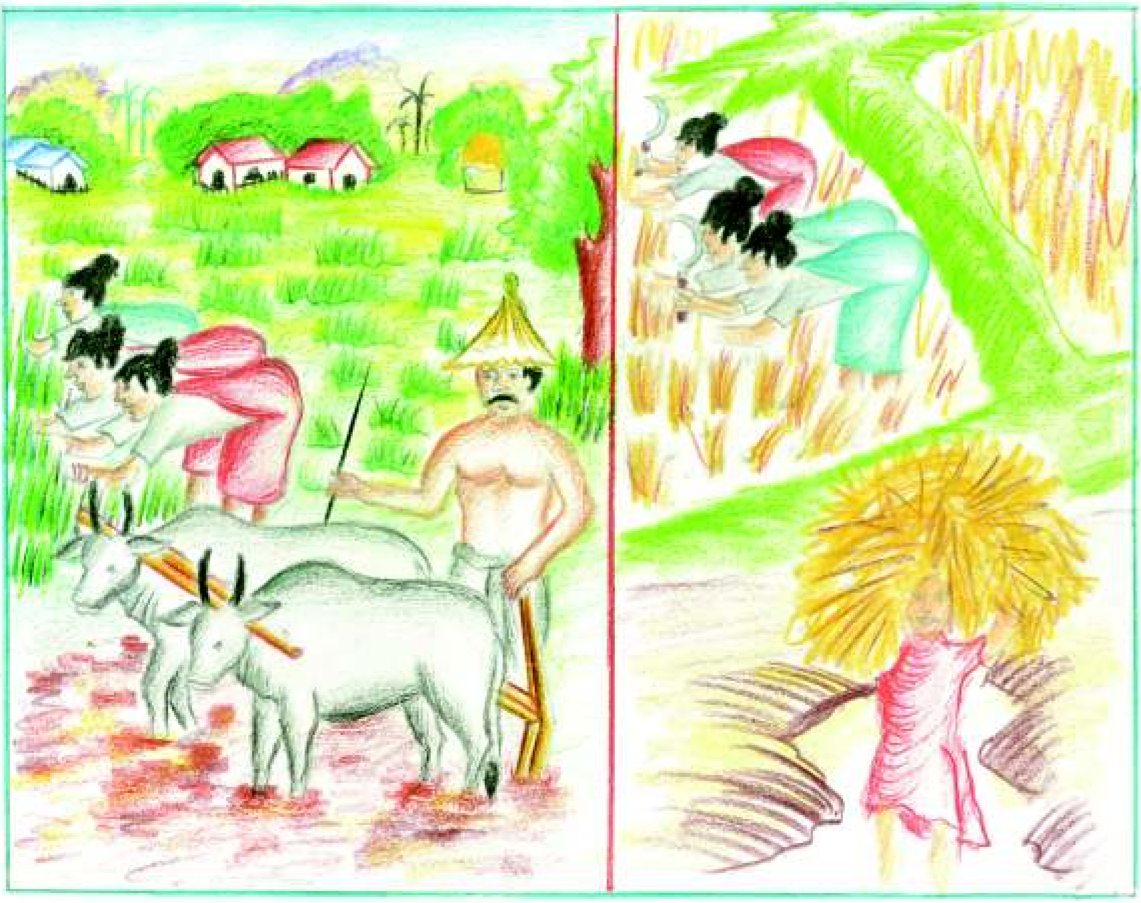

चित्र :
अर्नाल्ड
लाइसेंनधम,
आठवीं, शिलांग

देखती सभी किसान, "मजूर", पौध लगानेवाली औरतें चारों ओर से जल्दी-जल्दी चलते आते थे। किसी के सिर पर चारा होता तो किसी के हाथ पर थैला। किसी के हाथ में थैला होता तो किसी के हाथ में "टीपन"। मैं इन्हें देखती-देखती अपने घर की ओर चलती जाती।

एक बार हम धान लगाने के लिए काफी दूर चले गए। हमेशा की तरह हमने पौध उखाड़े, फिर धान लगाया। शाम को पैदल घर आते-आते साढ़े सात बज गए। घर में भाभी ने खाना पका रखा था पर खाने की हिम्मत नहीं हुई।

कभी-कभी तो बहुत थकान हो जाती। पूरे दिन झुके-झुके पानी-भरे खेत में रहो। फिर तो रात को आकर खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मैं अम्मा के पैरों में तेल मलती और अम्मा मेरे पैरों में तेल मलती। जब तक पौध लगाने का काम चलता हम हर रात सिर दर्द के कारण "डिसप्रींग" की गोली खाकर सोते थे।

एक दिन सुबह पौध लगाने गए तो तेज़ पानी बरसने लगा। फिर भी हम पौध लगाते रहे। इतना भीगे कि मज़ा आ गया। बूँदें टिप-टिप कर गिर रही थीं। उन बूँदों में क्या मस्ती थी... मैं बयान नहीं कर सकती। जब मौसम बहुत ठण्डा-सुहाना हो जाता, हम सुहाने गीत गाते।

खेतों की मेड़ों पर बैठकर क्या मस्ती करती थी मैं। मुझे वे दिन आज भी याद आते हैं, आते रहेंगे। मैं उन सभी औरतों को याद करती हूँ। और सबसे ज़्यादा याद आती है उनके साथ की गई वो हँसी-ठिठोली जो पल-भर के लिए हमारे सारे दुख-दर्द भुला देती थी।

कुछ दिनों में इन सारे खेतों में धान की हरी-भरी फसल लहराएगी। फसल की कटाई तो करेगी कम्पाइन मशीन, पर रोपाई के लिए हम सब फिर से मिलेंगे अगली जुलाई में।

(माँग - मतलब वह सीध, लाइन या पंक्ति, जिसमें धान के पौधे रोपे जाते हैं। ठैर - ठहर, निघा - निगाह, मजूर - मज़दूर, टीपन - लंचबॉक्स या टिफिन, डिसप्रींग - दर्द निवारक दवा, डिसप्रिन)

(नूरेनिशाँ खटीमा, उत्तराखण्ड में रहती हैं। और ग्यारहवीं में पढ़ती हैं।)

एक लकीर में चलती चींटियाँ एक दूसरे के कान में ऐसा क्या कह देती हैं कि वो बिना थके, बिना रुके चलती जाती हैं...और उस बड़े पेड़ की परछाईं ने तुम्हें इतना कितना डरा दिया कि तुम सपने में भी उससे खौफ खाने लगे...

कुदरत पर कहानियाँ

पहाड़, पेड़-पौधे, पानी, पंछी, हवा, बादल, शेर, हाथी, चींटी, मिट्टी, पत्थर...यानी कुदरत हर जगह है। तुम्हारा-हमारा इन से वास्ता पड़ता ही रहता है। ऐसे में कभी कुछ ऐसा हो जाता कि जो याद रह जाता है। या यूँ ही कभी इन पर कुछ लिखने का मन हो जाता है।

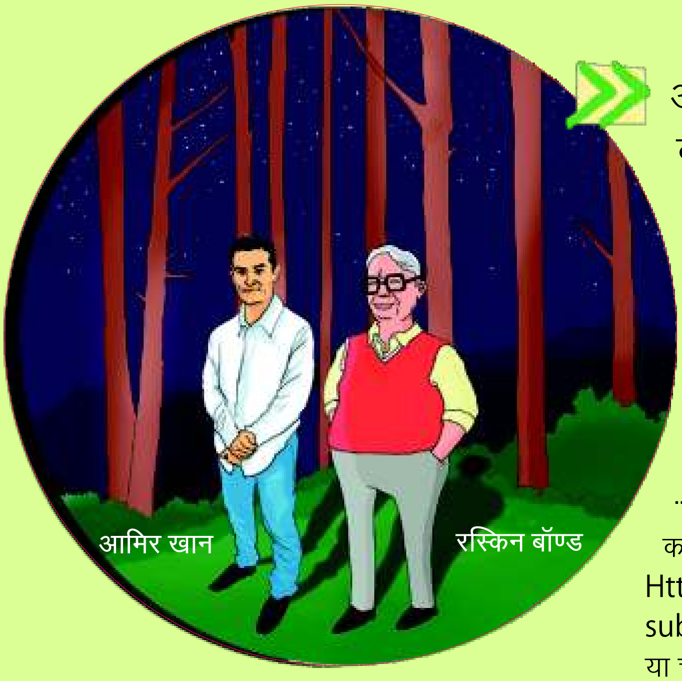

अगर ऐसा है तो प्रकृति पर लिखी अपनी कोई कहानी हमें भी भेज दो। विप्रो अर्थियन फाउण्डेशन चुनिन्दा कहानियों को अपनी वेबसाइट से प्रचारित करेगा। दो चुनिन्दा कहानियों को रस्किन बॉण्ड और आमिर खान की लिखी भूमिका के साथ प्रकाशित भी किया जाएगा।

कहानी को सीधे
Http://www.wipro.org/ earthianfoundations/ submission.php भेजने पर अपलोड किया जा सकता है।
या चकमक के ई मेल chakmak@eklavya.in पर भी भेज सकते हैं।

कहानी भेजने की आखरी तारीख **20 अगस्त 2015** है।
कहानी कम से कम 200 शब्दों की होनी चाहिए।

https://www.facebook.com/the.earthian.wipro

https://twitter.com/theearthian

Https://www.youtube.com/user/wiproearthian

हाँ, एक बात और कहानी भेजने के लिए ज़रूरी है कि तुम्हारी उम्र 9 से 11 साल के बीच हो।

पंजाबी बाल उपन्यास

(सातवीं किस्त)

मगरमच्छों की दुनिया का रोमांचक सफर

किरली मगरमच्छ और मरियल से लम्बूतरे जीव

जसबीर भुल्लर

मियाणी गाँव के सारे पशु उसी नदी पर पानी पीने जाते थे। मियाणी के लोग वहाँ कपड़े धोते थे। बच्चे भी वहाँ अकसर जाते। वे नदी किनारे खेलते रहते या छिछले पानी में नहाते रहते थे। मगरमच्छ के नदी में होने की बात ने गाँववालों को फिक्र में डाल दिया था।

गाँव के चार-पाँच युवक गँडासे-लाठियों से लैस होकर मगरमच्छ को मारने के लिए नदी की ओर चल दिए। उनके पीछे-पीछे तमाशबीनों की भीड़ भी चल दी। बाबा जीवन सिंह गाँव के जाने-माने लोगों में से थे। वे अपने खेत में काम कर रहे थे। उन्होंने हैरानी से गाँव के लोगों को छोटे-बड़े दलों में नदी की ओर जाते देखा। उन्होंने आवाज़ लगाकर पूछा, “किस मुहिम पर जा रहे हो?”

“बाबा! नदी में मगरमच्छ है। उसे ही मारने जाते हैं।” गँडासेवाला युवक बोला।

“मगरमच्छ!” जीवन सिंह हैरान था।

“हाँ बाबा!” बचना ने गँडासेवाले युवक की बात की पुष्टि की। “वह कहीं बाहर से आया लगता है।”

बाबा जीवन सिंह ने एक क्षण सोचा और फिर काम छोड़कर उनके साथ ही चल दिए,

“चलो देखते हैं ज़रा!”

सब कुछ दूर चलकर नदी के पास के पेड़ों के पास रुक गए।

दूर पत्थर पर किरली मादा मगरमच्छ लेटी दिखाई दे रही थी। हथियारोंवाले युवक उस पर हमला करने के तरीके के बारे में विचारने लगे। जीवन सिंह ने हाथ से इशारा कर उन्हें रोका और बोले, “जल्दबाज़ी मत करो। घड़ी भर ठण्डे दिमाग से सोचो। इसे मारे बिना ही काम चल जाए तो अच्छा है।”

भीड़ से तरह-तरह की बातें उठने लगीं।

“इसे मारे बिना कैसे चलेगा?”

“गाँववालों का जीना दूभर हो जाएगा।”

“यदि मगरमच्छ को नहीं मारा तो पता नहीं और कितने जीव इसकी बली चढ़ेंगे!”

“बेकार बहस में क्यों पड़े हो! सिर कुचलकर किस्सा खत्म करो इसका!”

किरली पत्थर पर शान्त लेटी थी। वह शान्त ही पड़ी रही। उसने भागकर पानी में जाने की कोई कोशिश नहीं की। गाँववाले पेड़ के नीचे खड़े होकर ज़ोर-ज़ोर से बतिया रहे थे। बाहें हिलाकर किरली की ओर इशारे कर रहे थे। किरली को कमज़ोर-से दिखते जीवों से कोई खतरा महसूस नहीं हो रहा था। वह चुपचाप उनकी हरकतों को देखती रही।

झण्डू और बचना के बापू ने नाराज़गी से एक बार बाबा जीवन सिंह की ओर देखा और दूसरी बार किरली मगरमच्छ की ओर। वह अपनी बात पर ज़ोर देते हुए बोला, “मेरी भैंस पूरे बीस हज़ार की थी। जब तक मगरमच्छ न मरे मेरी छाती में ठण्डक नहीं पड़ने वाली।”

बाबा जीवन सिंह ने हाथ खड़े करके भीड़ को शान्त होने को कहा और फिर बोले, “मगरमच्छों को मारना गैरकानूनी है। बाद में पुलिस-कचहरी के चक्कर में भागते फिरोगे। अभी क्यों नहीं सँभल जाते?”

“गैर कानूनी?” सब हैरान हो गए।

“हाँ!”

“तुम्हें कैसे पता है?”

“मुझे पता है।”

भीड़ कुछ ढीली पड़ गई। युवकों का जोश ठण्डा पड़ गया, “तो अब क्या करें?”

“हम लोग, वन विभाग के अफसर के पास चलते हैं। वह दौरे पर आया हुआ है। जंगल का डाक बंगला कौन-सा दूर है? उसे बोलते हैं कि कुछ करे।” बाबा जीवन सिंह ने सलाह दी।

अनमने मन से भीड़ जीवन सिंह से सहमत हो गई। उन्होंने एक बार फिर से किरली की ओर देखा और फिर आपस में बहस करते हुए डाक बंगले की ओर चल पड़े।

वन अधिकारी हृदयपाल जंगल के उत्तरी हिस्से का मुआयना करके लौटा तो कुछ चिन्तित था। उसकी चिन्ता जंगल के लिए भी थी और जंगली जीवों के लिए भी।

बीते कुछ सालों से पहाड़ों पर पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई हो रही थी। आज जंगल के मुआयने के दौरान उसने देखा कि कटाई का यह रुझान तराई के इलाके में भी बढ़ रहा था। पहाड़ों के नंगे हो जाने से इस बार फिर भयानक बाढ़ आई थी। इस बाढ़ ने न केवल लोगों की फसलें नष्ट की थीं बल्कि जंगली जीव भी भारी संख्या में मारे गए थे।

जंगलों के कम होने का असर पूरे वातावरण पर पड़ा था।

डाक बंगले के बरामदे में बैठा वह इसी सोच में डूबा था।

घने जंगल के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से घिरा डाक बंगला इस समय बिलकुल शान्त था। कल की बारिश ने पेड़ों और झाड़ियों के पत्तों को धो दिया था। बादल घिरे होने के कारण जंगल गहरे हरे रंग का दिखाई देने लगा था। पक्षियों की चहचहाहट जंगल की निस्तब्धता को मीठा-मीठा संगीत दे रही थी।

दूर से आती आवाज़ों ने हृदयपाल का ध्यान भंग कर दिया।

उसने सिर उठाकर देखा।

मियाणी गाँव की ओर से आते कच्चे रास्ते पर कुछ लोग आपस में बतियाते चले आ रहे थे। वे कुछ पास आए तो वन अधिकारी हृदयपाल ने उनमें से कुछ को पहचान लिया। वह जब भी दौरे पर आता, मियाणी गाँव के लोगों से अवश्य मिलता। उनसे जंगल के बारे में बातचीत करता, वन्य जीवों की बातें करता। कई बार उसे बातों ही बातों में जंगल के बारे में कई सुराग मिल जाते। हृदयपाल आगे बढ़कर उनसे गर्मजोशी से मिला। बाबा जीवन सिंह ने मगरमच्छ का पूरा किस्सा सुनाया।

वह मुस्कराया और गम्भीर आवाज़ में बोला, “मियाणीवासियों ने सचमुच में समझदारी की जो मगरमच्छ को मारा नहीं। कानून के डर से ही नहीं बल्कि यूँ भी मगरमच्छों के संरक्षण की ज़रूरत है। ये जीव धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं।”

“पर साहब! आज इसने भैंस मारी है। कल किसी और को मारेगा।” भीड़ में से एक ने अपनी शंका जताई और ज़ोर देकर बोला, “मगरमच्छ को मार ही देना चाहिए।”

वन अधिकारी भाँप गया था कि भीड़ पर उसकी बात का कोई खास असर नहीं हुआ है। मगरमच्छ को जीवित रखने में उन्हें कोई हित नहीं दिखाई दिया। क्या मगरमच्छ को मृत्युदण्ड मिलना चाहिए? सह सही है कि पेट भरना कोई अपराध नहीं है, पर जंगल में पेट भरने के तरीके जंगल के लिए ही ठीक थे। आबादी के लिए ये तरीके ठीक नहीं बैठते, लेकिन मगरमच्छ को यह बात कैसे समझाई जा सकती थी! और अगर समझाई भी जा सकती तो वह पेट क्या खाकर भरता?

“सुनो भाइयो! कल तक सब ठीक हो जाएगा। यदि ठीक न हुआ तो भले ही मगरमच्छ को मार डालना।” हृदयपाल ने गाँववालों को सन्तुष्ट करके भेज तो दिया था, पर मियाणीवालों की मगरमच्छ के आतंक से

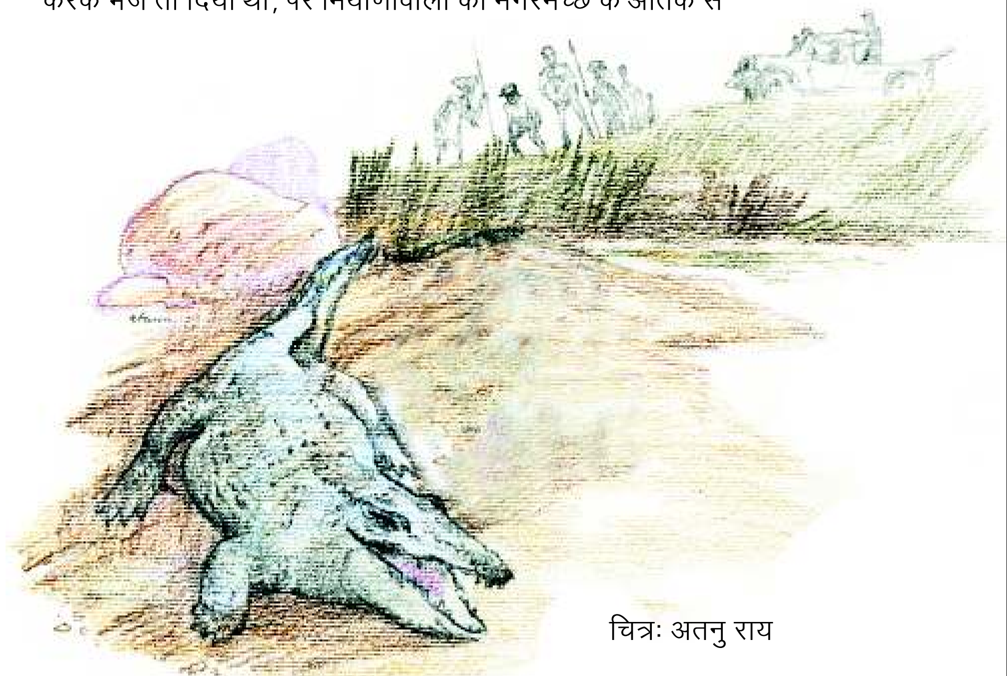

चित्रः अतनु राय

मुक्ति कैसे हो उसे नहीं मालूम था। ज़िन्दा मगरमच्छ को पकड़ना उसे नहीं आता था। उसके अमले का कोई भी बन्दा इस काम के लिए प्रशिक्षित नहीं था।

ऐसे मुश्किल समय में उसे अपना पुराना सहपाठी और गहरा दोस्त चेतन खन्ना याद आया। दोनों को जंगली जीवों से बड़ा स्नेह था। इन दिनों वह शहर में चिड़ियाघर का मुख्य प्रबन्धक था। डाक बंगले में फोन नहीं था। चेतन खन्ना से फोन पर बात करने के लिए उसे पास के कस्बे नरायणगढ़ जाना पड़ता। नारायणगढ़ वहाँ से बीस किलोमीटर दूर था। उसने ड्राइवर को जीप लाने को कहा और बिना देर किए नारायणगढ़ पहुँच गया। और चेतन खन्ना से फोन पर बात की। सब कुछ जानने के बाद चेतन खन्ना ने भी मगरमच्छ को जीवित पकड़ने में रुचि दिखाई। तय हुआ कि मगरमच्छ को पकड़ने में दक्ष कुछ लोग शाम तक वहाँ पहुँच जाएँगे।

हृदयपाल ने मगरमच्छ को सही-सलामत चिड़ियाघर में पहुँचाने की ज़िम्मेदारी उठा ली।

इधर किरली बहकर जहाँ पहुँच गई थी, अब वहीं उसे अपना घर बनाना था। उसने नदी के किनारे-किनारे कुछ दूर तक चक्कर लगाया और अपने नए घर के लिए जगह ढूँढ ली।

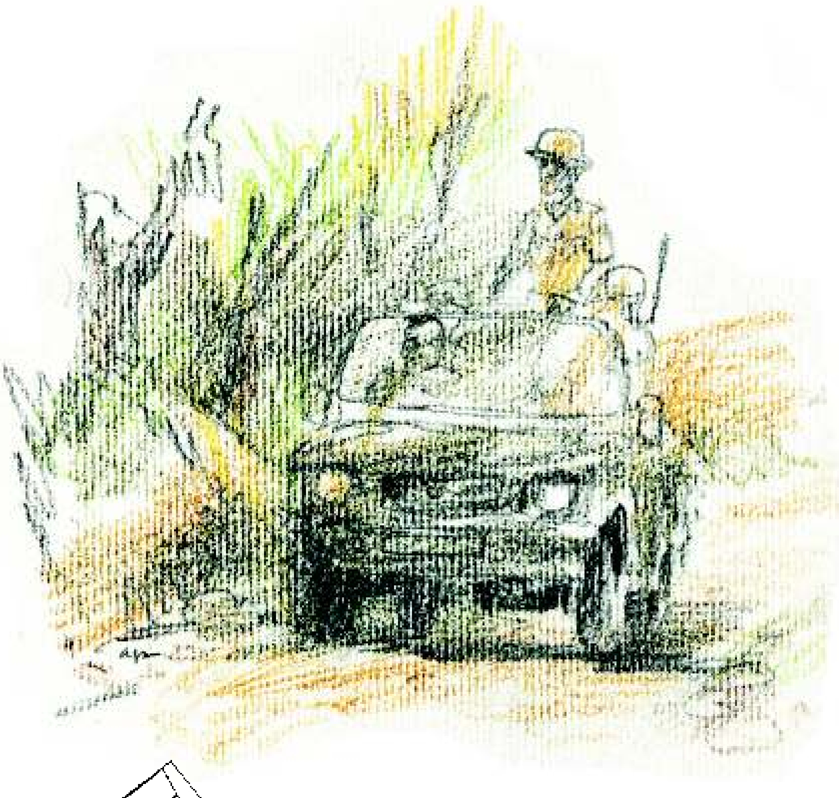

बाढ़ का पानी नदी के किनारों पर दूर तक कीचड़ फैला गया था। अपने आराम के लिए उसे इस कीचड़ की ज़रूर थी। नदी के इस पार पेड़ों की कमी थी, पर इस बात की किरली को कोई चिन्ता न थी। वह जहाँ भी रहती थी, आसपास का क्षेत्र हरा-भरा हो जाता था। वह छिप-छिपकर क्यों रहे? जंगल के खतरों से घिरे रहकर भी किरली मगरमच्छ ने खूँखार जानवरों को उससे डरते ही देखा था। वह शक्तिशाली थी। वह खतरों से लड़ना जानती थी। यदि वहाँ ओट नहीं भी थी तो उसे क्या! किरली ने वह जगह खोदनी शुरू कर दी। मगरमच्छों के घर तो प्राचीन काल से उजड़ते ही रहे थे और उजड़कर फिर से बसते भी रहे थे।

कठिनाइयों से जूझना ही मगरमच्छों का काम था। बुरे दिन आए थे तो अच्छे दिनों को भी आना ही था। किरली भी निराश होकर बैठनेवाली न थी। कुछ देर मिट्टी खोदने के बाद वह गड्ढे से बाहर आ गई।

आज दोपहर में कुहासा-सा था। बारिश तो नहीं हुई थी, पर आकाश साफ भी नहीं हुआ था। बल्कि बादल और भी गहरे हो गए थे।

किरली का शरीर आज सुबह से गर्म नहीं हुआ था। उसका मन था कि सूरज पूरी तेज़ी से चमके और वह धूप में लेटकर अपने शरीर को गर्माए। धूप के इन्तज़ार में शाम-सी हो गई थी। बादल छाए होने से समय से पहले ही अँधेरा लगने लगा था।

नई जगह पर आकर किरली को एक तसल्ली ज़रूर थी कि यहाँ उसका पेट भरने के लिए पर्याप्त भोजन था। आज पत्थर पर लेटे-लेटे उसने बड़ी संख्या में लम्बूतरे से जीव देखे थे। वे पेड़ों के नीचे खड़े ऊँची आवाज़ें निकाल रहे थे। किरली उन मरियल से जीवों को जब चाहे मारकर खा सकती थी।

अचानक एक भयानक आवाज़ सुनकर उसने आँखें खोलीं। कीचड़ से थोड़ी दूर एक जीप आकर रुकी। किरली ने इससे पहले ऐसी कोई चीज़ नहीं देखी थी। वह हैरान-सी जीप को देखती रही। जीप से कुछ लोग उतरे। उनके पास लाठियाँ, रस्से और टॉर्च थीं। उन में से एक व्यक्ति इशारों से कुछ बताने लगा।

किरली मगरमच्छ ने इन जीवों को आज दिन में भी देखा था। इस समय उसका पेट भरा हुआ था, इसलिए उसने उधर कोई खास ध्यान नहीं दिया।

अगले अक में जारी

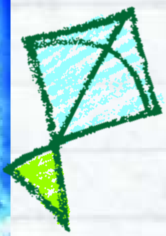

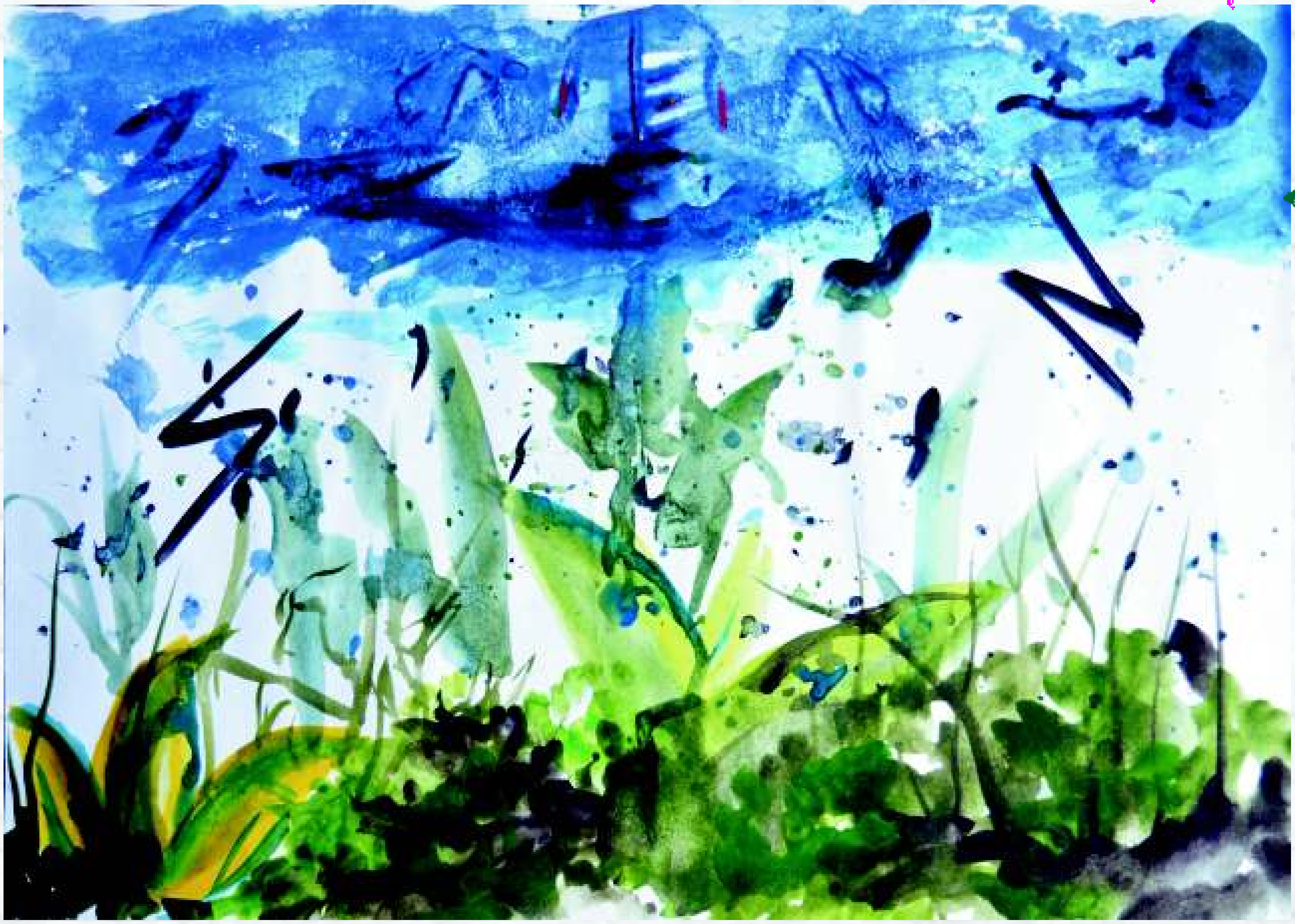

– सिया जैन, पाँचवीं, डीपीएस लुधियाना, पंजाब

काश मैं बादल होता

अगर मैं एक बादल होता
तो मैं दुनिया घूमने जाता
रिमझिम-रिमझिम बारिश करता
वर्षावनों में खूब बरसता
अलग-अलग मैं रूप बनाता
कभी मैं एक मोर बन जाता
कभी छोटी चिड़िया बन जाता
जब होते लोग गर्मी से परेशान
पंखें भी ना आते काम
तब मैं बरसकर राहत दिलाता
काश मैं एक बादल होता

–अक्षत चमोली, पाँचवीं,
जोशीयाड़ा, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

जादू और राक्षस मटका

एक लड़की को एक जगह पर दो मटके मिले। जो छोटा मटका था उसमें जादू और बड़े में राक्षस था। लड़की ने छोटा मटका ले लिया। और एक लड़के को दिखाया। लड़की सोचने लगी कि उसे भूख लग रही है। उसने सोचा कुछ खाने को मिल जाए। मटका बोल सकता था। उसने कहा क्या खाना चाहोगी? लड़की को समझ नहीं आ रहा था कि क्या खाए। उसने बोला कि लड्डू खाना है। मटके से लड्डू आ गया। लड़के ने लालच की। लड़के ने लालच में बड़ा मटका उठा लिया। लड़के ने सोचा कि मटके में खाना होगा। लड़के ने मटके की सारी चीज़ें निकालीं। मटके के अन्दर से राक्षस निकल आए। राक्षस सो रहे थे।

जैसे ही लड़के ने मटके को खोला वो नींद से उठकर निकल आए। राक्षस लड़के के पीछे भागने लगे। लड़का डर गया और मटका छोड़कर चला गया।

- यशवर्धिनी बैन, पहली, कार्मल कॉन्वेन्ट स्कूल, भोपाल

परछाइयाँ

जी. ए. कुलकर्णी

मराठी से अनुवाद - किशोर दरक

हाथ में कागज़ का पैकेट सम्भाले बिम्म को आता देख माँ थोड़ी घबराईं।

बिम्म जब भी यहाँ-वहाँ भटककर लौटता तो वह अपने साथ क्या लाएगा या क्या नहीं लाएगा यह कोई सोच भी नहीं सकता था। एक बार वो महादेव फल की बेला का एक भारा उठा लाया था और उनमें से शिवजी की पिण्डी जैसे बीज निकालकर अपने हाथ कड़वे कर लिए थे। एक बार टूटी नीली शीशी के दो टुकड़े उठाकर लाया और अपनी उँगली कटवा ली थी। और एक बार इंजेक्शन की तीन खाली बोतलें ले आया था। उसका मानना था कि उनमें बत्ती लगाने से बिजली के लट्टू बन जाएँगे। एक बार कपास का फल लाकर सारे घर में उससे रूई बिखेर दी थी। आँगन से वह एक बार मधुमक्खी का सूखा छत्ता ले आया था। वहीं पर उसे एक बार एक पुराना घोंसला मिला था। प्लास्टिक के रंग-बिरंगे टुकड़े, बस के हरे-पीले टिकट, सिगरेट के पैकेट तो हमेशा आते ही रहते थे। लाने के बाद इन्हें वह एक ही जगह पर नहीं रखता था। मधुमक्खी का छत्ता उसने बाबा की मेज़ पर रक्खा था तो घोंसला बब्बी के बस्ते में मिला। इसलिए महीने में एक बार ऐसी तमाम चीज़ों को घर से ढूँढ-ढूँढकर दूर फेंक आना माँ के लिए एक काम बन गया था।

परसों तो हद हो गई। मुट्ठी बराबर छोटे कुत्ते के पिल्ले को छाती से लगाकर वह घर ले आया। घर आते ही पिल्ला धूल के निशान बनाते हुए पूरे घर में घूमने लगा। खाने की टेबल पर चढ़ा, कुर्सी पर बैठा, फिर सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गया और पलंग के नीचे एकदम दूर के कोने में जाकर आराम से बैठ गया। बाद में छाते के टेढ़े हत्थे से उसे खींचकर बाहर निकालते-निकालते माँ को एक घण्टा लग गया और उसके पीठ की हड्डियाँ ढीली पड़ गईं सो अलग। पिल्ले को एक बालटी में डालकर वो उसे नुक्कड़वाली चक्की के पास छोड़ आईं। पिल्ला वहीं नाच रहा था तभी लकड़ी की टालवाला नामू आया और उसे उठाकर ले गया।

माँ घर लौटीं तो बिम्म ने पूछा, “कहाँ गया पिट्टू?”

“पिट्टू?”

“हाँ, उसका नाम पिट्टू है, मुझे पहले से ही पता था।” बिम्म बोला।

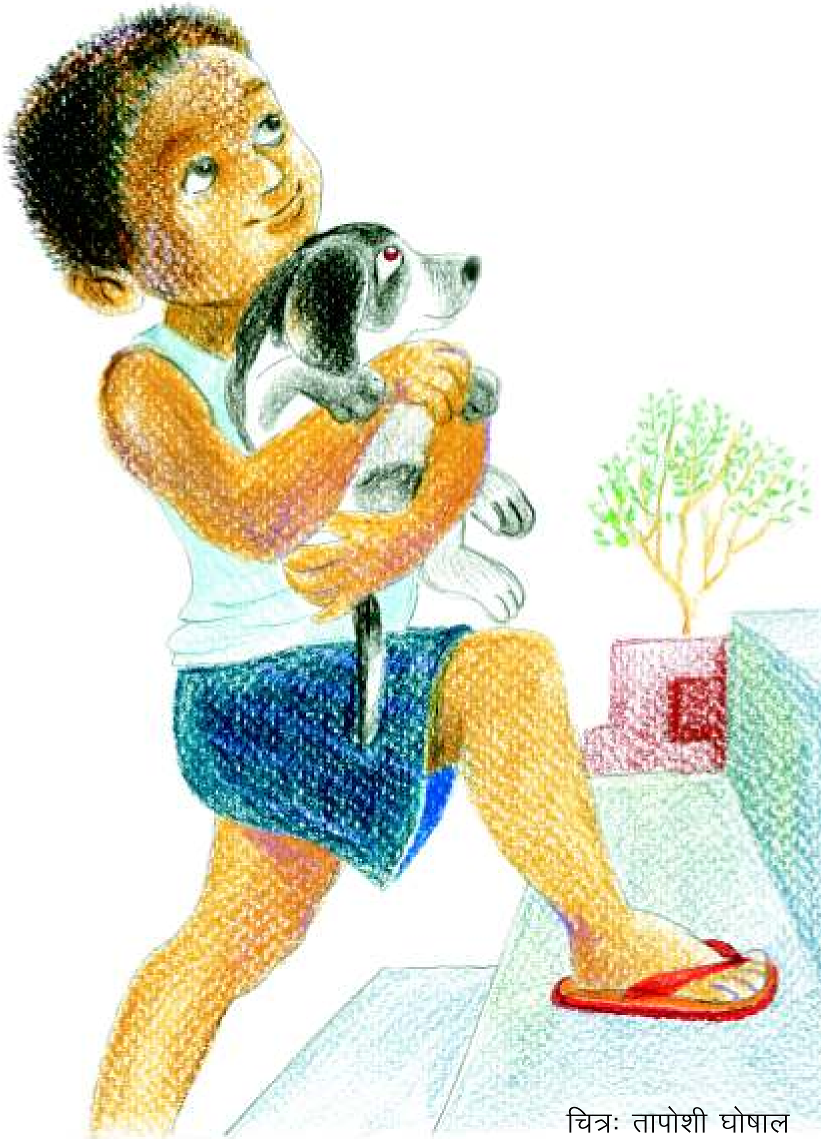

चित्रः तापोशी घोषाल

शेजारी

मराठी भाषा के इस शब्द का मतलब होता है – पड़ोसी।

इस कॉलम में तुम मराठी साहित्य की रचनाएँ पढ़ते हो। इस बार पढ़ो मराठी के जाने-माने लेखक जी. ए. कुलकर्णी की किताब बखर *बिम्मची* की एक बेहद खूबसूरत कहानी...

“तो क्या वो पिट्टू था?” माँ बोलीं। बिम्म नामू को जानता था। वह नामू के पास जाकर फिर से यह कहानी ना शुरू कर दे इसलिए माँ ने कहा, “मैंने उसे रेल में बिठाकर दिल्ली भेज दिया है। वहाँ उसका भी चाचा रहता है।”

बिम्म अन्दर आया। और कागज़ का एक पैकेट खोलकर ज़मीन पर फैला दिया। उसमें आइने का एक टुकड़ा, तीन-चार रंग-बिरंगे कपड़ों की चिन्दियाँ जो दर्ज़ी की दुकान के सामने पड़ी मिली थीं, गोंद से भरा एक छोटा, टूटा हुआ बेल था। आज उसकी गठरी में बस इतनी ही चीज़ें देखकर माँ को सुकून मिला। बिम्म ने वे सारी चीज़ें कागज़ के एक हिस्से में रक्खीं और बाकी के खाली हिस्से में कागज़ को मोड़ते हुए वह कुछ रखता रहा।

“बाकी सब में क्या है?” माँ ने कौतुहल से पूछा।

“ये सारी परछाइयाँ हैं।” बिम्म ऊपर देखे बिना बोला।

“परछाइयाँ?”

“हाँ, आज मैं बहुत सारी परछाइयाँ जमाकर लाया हूँ।”

पता नहीं ऐसे वक्त में बब्बी कहाँ से आ धमकती! उसने गर्दन हिलाकर अपनी चोटियाँ फड़फड़ाईं-झटकाईं और नाक टेढ़ी करते हुए बोली, “परछाइयाँ भी कभी इकट्ठी की जाती हैं? पगला कहीं का।”

लेकिन माँ ने बिम्म से कहा, “तुम उसकी ओर ध्यान मत दो। उसके कान अब थोड़े काटने पड़ेंगे। अब बताओ, किस-किस की परछाइयाँ लाए हो तुम?”

“दीवार के पास एक बछड़ा खड़ा था, बिलकुल सफेद-सा। उसकी परछाई बढ़िया थी। और टाँग टेढ़ी कर ताँगे का घोड़ा खड़ा था, तार पर चार चिड़ियाँ थीं। उनकी परछाइयाँ रास्ते में पड़ी थीं। इसके अलावा पिट्टू की परछाई भी तो है।”

“अब ये नया पिट्टू कहाँ से आया?” बब्बी ने डाँटते हुए पूछा। पर एक क्षण के लिए माँ डर गईं। इसे क्या पिट्टू फिर-से दिखाई दिया? मतलब आ गई नई मुसीबत!

“पिट्टू तुम्हें कहाँ मिला? मैं तो उसे दिल्लीवाली गाड़ी में बिठा आई थी।” माँ ने कहा।

“वह आज नहीं दिखा। वह अपनी छाँव में बैठा था न जब मैंने उसे उठाया था, तब उसकी परछाई उठाना भूल गया था मैं। वह परछाई वहीं पड़ी थी तो मैं ले आया।” बिम्म बोला।

“अपनी परछाई भूलनेवाला तुम्हारा पिट्टू तुम्हारे जैसा ही सयाना मालूम पड़ता है।” बब्बी ने कहा।

उसे चुप कराने के लिए एक हलका-सा चाँटा लगाते हुए माँ बोलीं, “अच्छा हुआ तुम्हें वो राहुल हाथी नहीं मिला। वरना तुम उसकी परछाई खींचते, तुमसे तो वह उठाई नहीं जाती। फिर तुम्हें और उस परछाई को उठाकर लाते-लाते मेरे पैर थक जाते। चलो ठीक है, पहले खाना खा लो। फिर मुझे भी लेटने के लिए थोड़ा-सा समय मिल पाएगा।”

फिर सबने खाना खाया। माँ थोड़ी देर रसोई में ही सोती रहीं। बब्बी की कोई बिखरे बालोंवाली सहेली आई और वे दोनों गजगे खेलती रहीं। धूप अब तक पीछे खिसकने लगी थी। पहले धूप तुलसी के गमले पर पड़ी, फिर गेट लाँघकर बाहर पहुँची। पर सामनेवाले बड़े मकान पर धूप ही धूप थी। बब्बी का अपनी सहेली के साथ झगड़ा हुआ और सहेली चली गई। बब्बी आई और बिम्म की बगल में सीढ़ियों पर बैठ गई। थोड़ी देर बाद बिम्म चिल्लाकर बोला, “माँ, गाय आई है।”

माँ नींद से जग गईं और सामनेवाली कुर्सी में बैठ गईं। फिर हैरानी से पूछा, “कौन-सी गाय? मुझे तो वह कहीं दिखाई नहीं दे रही।”

“अरे, क्या वह गेट के पास खड़ी नहीं है?” बिम्म ने हाथ दिखाते हुए कहा, “सफेद-सफेद बछड़ा, काली-काली गाय!”

“क्या कह रही है वो?”

“कहती है तुम बड़े सयाने लड़के हो। मेरे बछड़े की परछाई लौटा दो। अगर उसके पास परछाई नहीं हो तो कोई उसके साथ नहीं खेलेगा।”

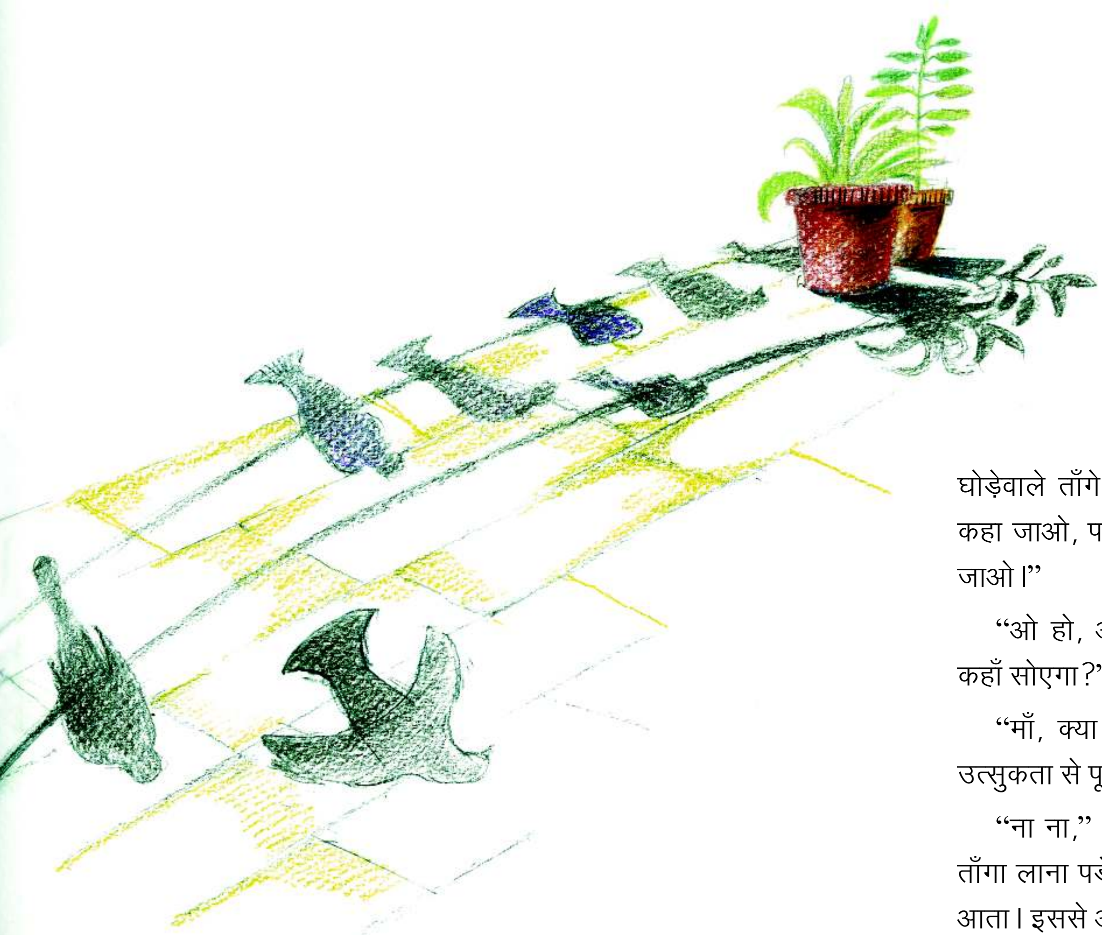

“देखो, बेचारा बछड़ा! अकेले कैसे खेल पाएगा? उसकी परछाई लौटा दो।” माँ ने कहा। उसने बब्बी को आँखों के इशारे से डाँटा पर उसकी हँसी तो जैसे उबल रही थी। उसने घुटने पर हाथ रखे और उनमें अपना मुँह छुपा लिया।

बिम्म कागज़ के पास आया और उसके एक-दो मोड़ ऊपर- नीचे करते हुए उसने एक मोड़ बाहर निकाला। उसे लेकर गेट के पास गया और वहाँ खड़ी गाय को वह परछाई दे आया। गाय चली गई।

“चली गई गाय? क्या कहा उसने?” माँ ने पूछा।

“उसने कहा, बिम्म, तुम बड़े सयाने हो। कल मैं तुम्हें एक कप दूध दूँगी।”

थोड़ी देर बाद बिम्म बोला, “माँ, घोड़ा आया है। गेट के पास खड़ा रो रहा है।”

“तो पूछो उससे क्यों रो रहा है,” माँ ने कहा।

बिम्म गेट के पास गया और थोड़ा रुककर वापस आया। कहने लगा, “घोड़े के मालिक ने उसे घर से निकाल दिया है। परछाई के बगैर भी कहीं घोड़ा होता है भला? लोग हँसेंगे ना! बगैर परछाई के घोड़ेवाले ताँगे में लोग क्यों बैठेंगे? मालिक ने उससे कहा जाओ, परछाई लेकर आओ वरना यहाँ से निकल जाओ।”

“ओ हो, अब बेचारा घोड़ा कहाँ जाएगा? रात में कहाँ सोएगा?” गर्दन हिलाते हुए माँ ने कहा।

“माँ, क्या उसे अपने घर में रख लें?” बिम्म ने उत्सुकता से पूछा।

“ना ना,” माँ ने झट से कहा। “फिर घोड़े के लिए ताँगा लाना पड़ेगा और मुझे तो अभी ताँगा चलाना नहीं आता। इससे अच्छा है कि उसकी परछाई लौटा दो। वह अपने घर लौट जाएगा।”

बिना मुँह ऊपर किए बब्बी हँसने लगी। बिम्म ने कागज़ से एक और मोड़ उठाकर घोड़े को दिया और घोड़ा अपनी आँखें पौंछता चला गया।

ऊपर देखते हुए पर माँ की तरह उँगलियों से होंठों को छिपाते हुए बब्बी बोली, “माँ, लगता है अब चिड़ियाँ आएँगी!”

“आएँगी नहीं, वो आ चुकी हैं। सामनेवाली दीवार पर देखो तो!” बिम्म बोला, “उन्हें अपनी परछाइयाँ वापस चाहिए। वे रात में अपनी परछाइयाँ ओढ़कर सोती हैं। परछाइयों के बगैर उन्हें नींद आती ही नहीं।”

“बेचारी चिड़ियाँ, ओढ़ना नहीं होगा तो रात में ठण्ड के मारे सिकुड़ जाएँगी! तुम सयाने हो ना? तो उन्हें उनकी परछाइयाँ लौटा दो।” माँ ने कहा। बिम्म के उन्हें उनकी परछाइयों की माला लौटाते ही वे भर्रर्रर्र से उड़ गईं।

“अब बस पिट्टू ही बचा है।” कागज़ की ओर देखते हुए बिम्म ने कहा।

"वो अब कैसे आएगा? मैं तो उसे दिल्लीवाली रेल में बिठा आई हूँ।" कुछ सोचते हुए माँ ने कहा। फिर उँगलियों से चुटकी बजाई और हँसने लगीं।

"अच्छा मैं ऐसे करती हूँ, अभी मैं आटा पिसवाने चक्की पर जा रही हूँ। वहाँ से स्टेशन बिलकुल पास में है। पिट्टू की गाड़ी अभी तक छूटी नहीं होगी। जब तक दिल्ली जानेवाले लोगों से गाड़ी भर नहीं जाती, यहाँ से छूटती नहीं। कभी-कभी तो पूरा महीना गाड़ी स्टेशन पर खड़ी रहती है। मैं जाकर देखती हूँ और पिट्टू से अपनी परछाई ले जाने के लिए कह दूँगी। वैसे भी उसे बैठने के वास्ते या ओढ़ने के वास्ते अपनी परछाई तो चाहिए ही होगी!"

चक्की का नाम सुनते ही बब्बी कूदकर खड़ी हो गई और कहा, "माँ, तुम स्टेशन हो आओ, मैं चक्की चली जाती हूँ।"

"बस हो गई तुम्हारी चक्की!" बब्बी के सामने हाथ नचाते हुए माँ बोलीं, "चक्की में पिसाई का डिब्बा रखते ही तुम घूमने लग जाओगी। फिर बब्बी को टब्बी मिलेगी, टब्बी को डब्बी मिलेगी और आटा घर पहुँचते-पहुँचते बारह बरस लग जाएँगे। नहीं चाहिए तुम्हारी चक्की-वक्की। उसके बदले मेरे आने तक अन्दर थाली में रक्खे चावल बीन दो।"

माँ से बब्बी को डाँट पड़ने पर बिम्म खिल उठा और उसने तालियाँ बजाईं। फिर माँ से कहा, "पिट्टू से कहना कि जब मैं हमारे चाचा के पास दिल्ली जाऊँगा तो तुमसे ज़रूर मिलूँगा!"

पिसाई का डिब्बा उठाकर माँ बाहर निकलीं। सामने ही उन्हें नामू मिला। किसी के यहाँ लकड़ियाँ पहुँचाकर वह घर जा रहा था। माँ उसी के साथ चक्की चली गईं। इधर बब्बी चावल की थाली से चावल बीनने का नाटक करने लगी। बीच-बीच में मुँह बनाकर वह बिम्म को चिढ़ाती रही।

थोड़ी देर बाद माँ लौट आईं। पिसाई का डिब्बा कुर्सी पर रक्खा और धम से उसकी बगल में बैठ गईं। उनका चेहरा बिलकुल मुरझाया हुआ था। वे बोलीं, "बब्बी, अब चावल रहने दो। एक काम करो। गाड़ी में भीड़ बहुत थी इसलिए पिट्टू मुझे दिखाई नहीं दिया। तुम बिम्म से उसकी परछाई लो और दौड़कर गाड़ी में रख आओ। पिट्टू उसे खुद ढूँढ लेगा। बिम्म, वो परछाई दे दो बब्बी को।"

बब्बी कुछ बोलना चाहती थी पर माँ का अजीब-सा चेहरा देखकर वह सहम गई। उसने माँ को पहले कभी ऐसे नहीं देखा था। उलझी हुई बब्बी ने माँ की तरफ देखते हुए अपना हाथ आगे बढ़ाया तो बिम्म ने बची हुई परछाई उसके हाथ पर रख दी। फिर हाथ को वैसे ही फैलाए हुए बब्बी घर से निकल गई।

माँ ने बिम्म को अपनी तरफ खींचा और बोलीं, "देखो बिम्म, ध्यान से सुनो। इसके बाद कभ्भी भी किसी की परछाई मत लाना, समझे?"

फिर आवेग के साथ बिम्म को गले से लगा लिया। उनकी आँखें भर आई थीं।

मराठी के जाने-माने लेखक जी. ए. कुलकर्णी की किताब *बखर बिम्मची* से।

प्रिय दोस्तो,

पिछली बार अंक के पहले ही पन्ने पर यह बात साझा की थी कि हम चकमक के दाम बढ़ा रहे हैं। इस बार हिम्मत नहीं हुई। कोई दूसरा टिकाऊ रास्ता भी नहीं मिला। कोशिश रहेगी कि कोई रास्ता निकले और चकमक की दरें हम कुछ कम कर सकें। एक सूरत यह है कि हम बड़ी संख्या में पाठक जोड़ पाएँ। क्या इसमें तुम हमारी मदद कर सकते हो?

फिलहाल तो खबर यह है कि अब व्यक्तिगत चन्दा भी वही होगा जितना कि चकमक का संस्थागत चन्दा है। यानी एक साल का 500 रुपए। एक अंक की कीमत 50 रुपए हो जाएगी। राहत की बात इतनी-सी है कि अब हर अंक में 48 पेज होंगे। यकीन है चकमक इस बढ़ी कीमत में भी तुम तक पहुँचती रहेगी। पहुँच की किसी भी मुश्किल के सिलसिले में तुम हमें ईमेल, एसएमएस, या चिट्ठी लिख सकते हो। हमारी कोशिश रहेगी कि चकमक उसके हर चाहने वाले तक पहुँचकर ही रहे। और बढ़ा हुआ चन्दा उसमें बाधक न बने।

- चकमक

094250 10115 (मो. नम्बर)

Chakmak@eklavya.in

इस माह की पहेली का हल

शायद तुमको लग सकता है कि वापस आने की गति यदि 40 की दुगनी हो जाए तो औसत गति 40 हो जाएगी। पर ऐसा नहीं है।

मान लो कि संग्रहालय जाने में 1 घण्टा लगा। इसका मतलब यह हुआ कि संग्रहालय 20 किलोमीटर दूर था। इस हिसाब से आना-जाना 40 किलोमीटर होगा। और 40 किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से कुल 1 घण्टा लगाना चाहिए।

पर 1 घण्टा तो जाने में ही लग चुका है तो आने में कुल समय शून्य लगना चाहिए जो कि मुमकिन नहीं है। इसलिए क्योंकि बस चालक के लिए बिना समय लगाए वापस आना नामुमकिन है।

प।हे।ली

देखी एक अनोखी रानी
जो दुम से पीती है पानी (दिया)

बूझो भैया एक पहेली
जब काटो तब नई नवेली (पेंसिल)

प्रस्तुति - शफीक रहमान, छठी

जुलाई की चित्र पहेली हल

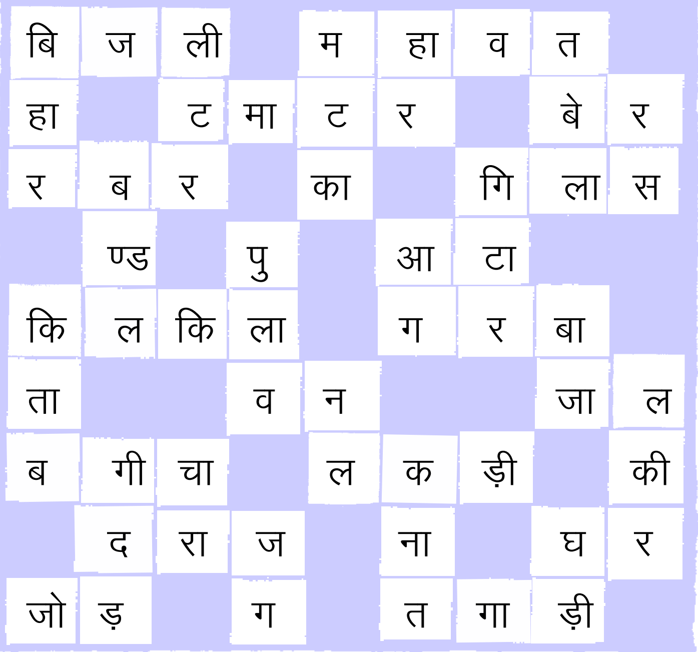

बि	ज	ली		म	हा	व	त	
हा		ट	मा	ट	र		बे	र
र	ब	र		का		गि	ला	स
	ण्ड		पु		आ	टा		
कि	ल	कि	ला		ग	र	बा	
ता			व	न			जा	ल
ब	गी	चा		ल	क	ड़ी		की
	द	रा	ज		ना		घ	र
जो	ड़		ग		त	गा	ड़ी	

हाथ-पैर तो एक कहो,
पर पेट है मेरा गहरा।
मेरा मालिक सो जाए,
मैं तट पर देती पहरा। (नाव)

प्रस्तुति - सौम्या स्तुति, पाँचवी, डीपीएस पटना

फॉर्म-4 (नियम-8 देखिए)

मासिक चकमक बाल विज्ञान पत्रिका के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के सम्बन्ध में जानकारी

प्रकाशन का स्थान : भोपाल
प्रकाशन की अवधि : मासिक
प्रकाशक का नाम : अरविन्द सरदाना
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

मुद्रक का नाम : अरविन्द सरदाना
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

सम्पादक का नाम : सुशील शुक्ल
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : एकलव्य
ई-10 शंकर नगर,
बी.डी.ए. कालोनी, शिवाजी नगर
भोपाल 462 016

उन व्यक्तियों के नाम, : रैक्स डी. रोज़ारियो
राष्ट्रीयता और पते : भारतीय
जिनका इस : एकलव्य
पत्रिका पर स्वामित्व है ई-10 शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शिवाजी नगर , भोपाल 462 016

मैं अरविन्द सरदाना यह घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)
अरविन्द सरदाना

20 जुलाई 2015

चित्र पहेली

► बाएँ से दाएँ ▼ ऊपर से नीचे

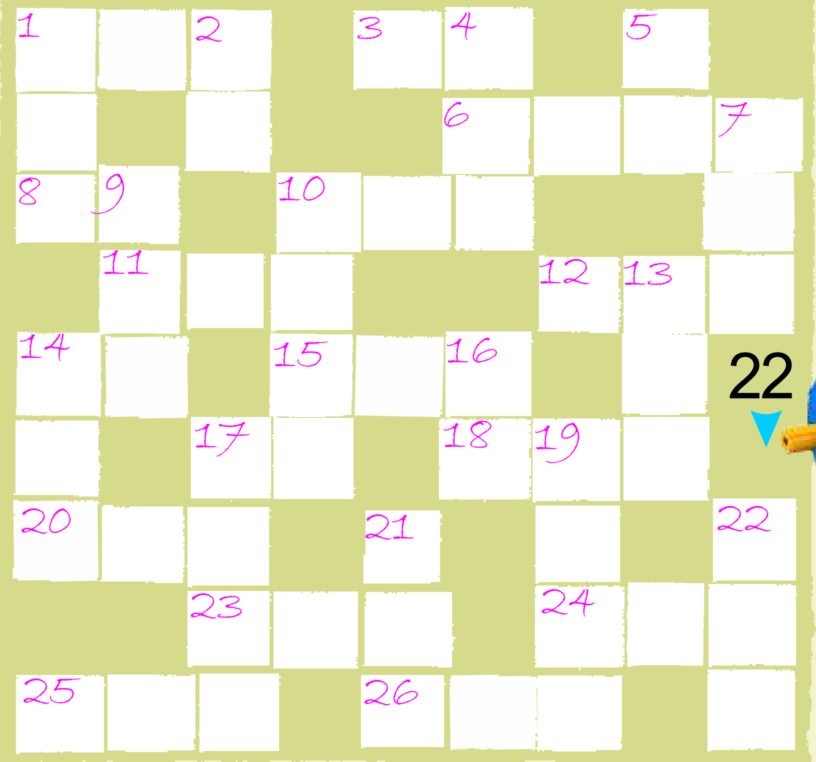
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26

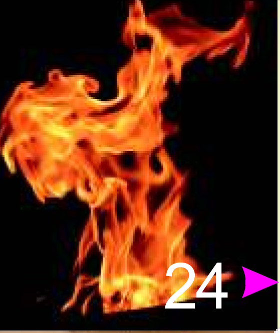

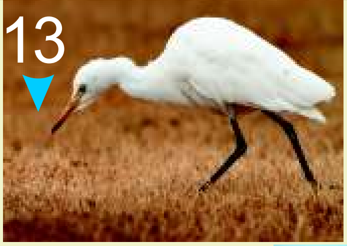

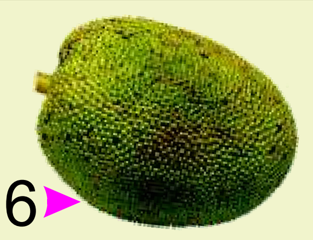

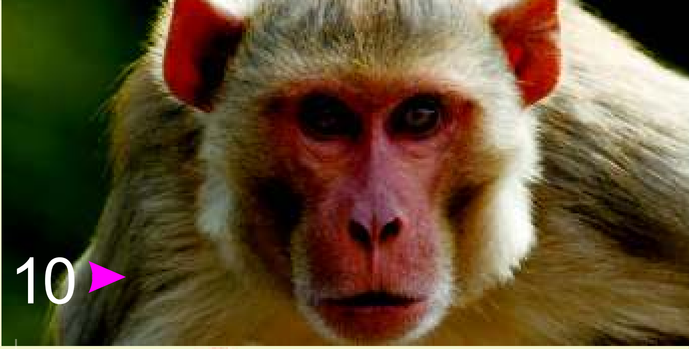

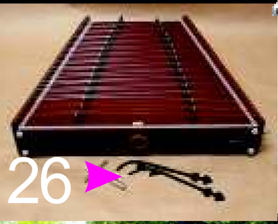

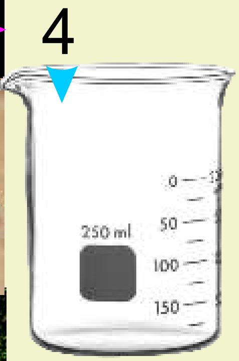
4 ▼
250 ml
0
50
100
150

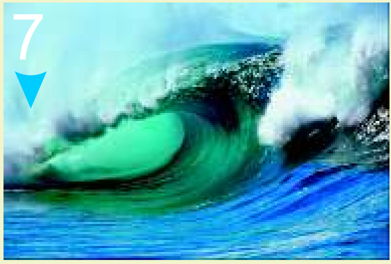

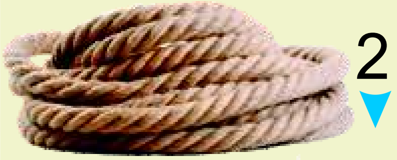

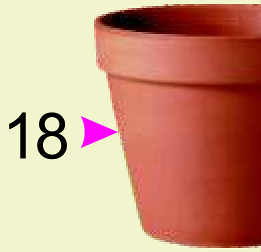

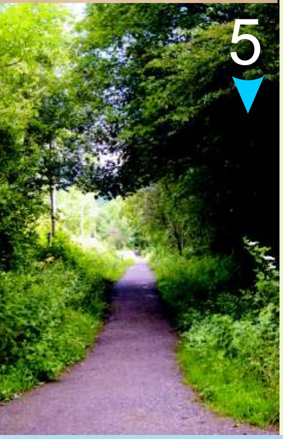

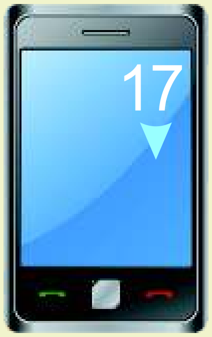

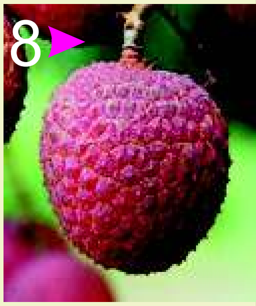

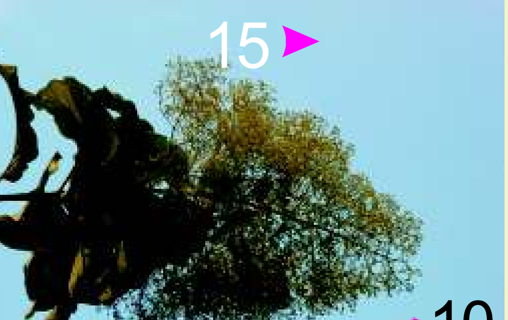

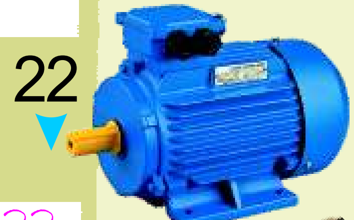

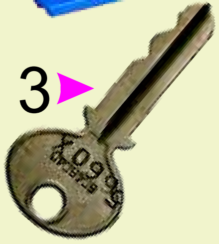

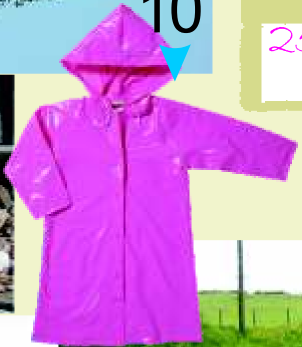

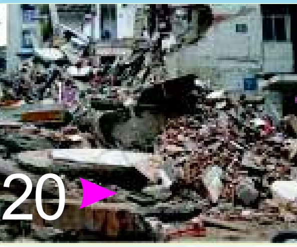

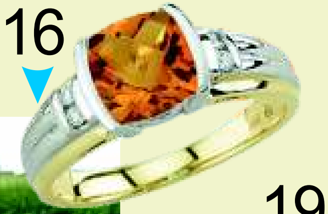

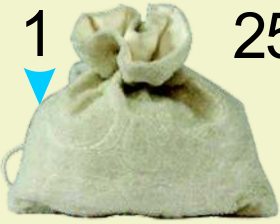

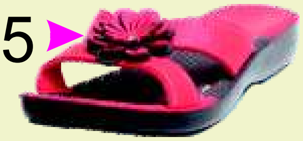

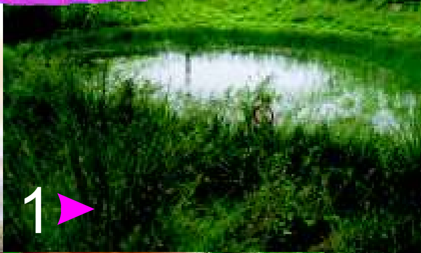

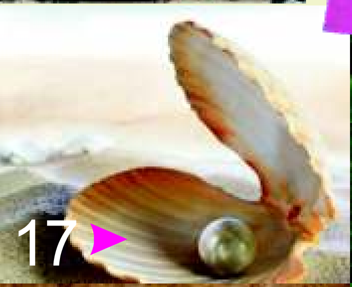

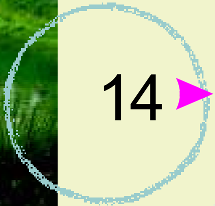

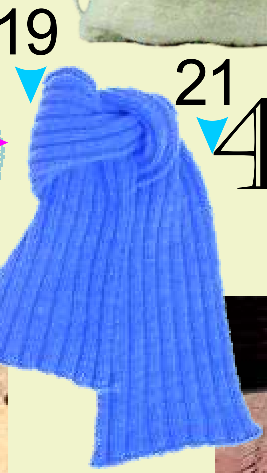

21 ▼ 40

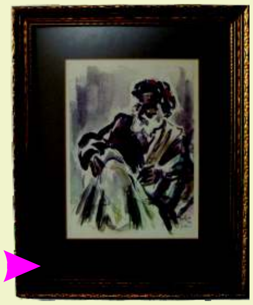

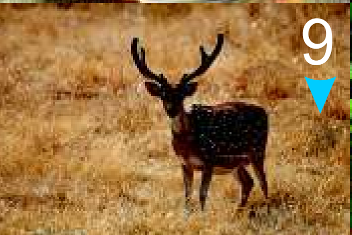

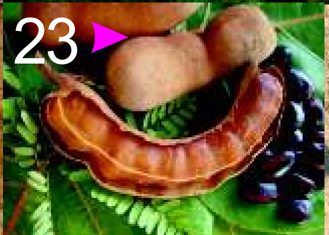

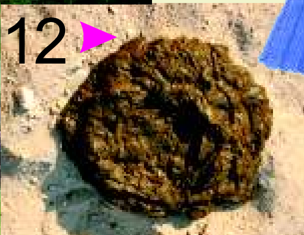

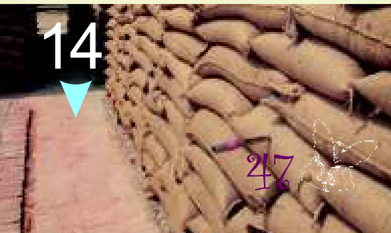

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2015-17

हमने पकाई है एक डायरी... तुम्हारे लिए!

आकर्षक चित्रों से सजे-धजे डेढ़ सौ पन्ने

इसका नाम है - दुबली चींटी सबसे आगे थी...

यह डायरी बहुत ही दोस्ताना स्वभाव की है। तुम्हारे पास आते ही तुमसे बातें करेगी...रोज़-रोज़ तुम्हारे ही पड़ोस की नई-नई चीज़ों से, लोगों से मिलवाएगी। तुम्हारे साथ चाँद-तारे निहारेगी। तुम्हें चित्र बनाने के लिए नए-नए विषय सुझाएगी। कई बातें होंगी जो तुम अब तक किसी को नहीं बताते होगे...तुम इस डायरी से साझा कर सकते हो।

फ़रवरी
नवम्बर
अप्रैल
दुबली चींटी सबसे आगे थी
मेरी डायरी

आज रात का आसमान रोज़ बदलता है। कई तारे और ग्रह कभी दिखते हैं, कभी नहीं। कुछ तो अपनी जगहों से ही सरक जाते हैं। चाँद तो इस मामले में बड़ा उस्ताद है। कभी गोल-गोल, कभी फाँक-फाँक।

जुलाई 2015 से जून 2016 की
इस डायरी को मँगाने के लिए सम्पर्क करें -

कीमत: 150 रुपए
डाक खर्च अतिरिक्त
10 से अधिक प्रतियों का डाक खर्च हम देंगे

भुगतान एकलव्य के नाम से बने चैक/मनिऑर्डर/ड्राफ्ट द्वारा भेजें।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल - 462016 (म.प्र.)
फोन - 09425010115, 0755 - 2671017, 4252927
email - chakmak@eklavya.in, pitara@eklavya.in www.chakmak.eklavya.in www.eklavya.in

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रेक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से
प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: सुशील शुक्ल